ISBN 81-237-0430-5

पहला संस्करण : 1983
आठवीं आवृत्ति : 1994 (*शक* 1916)

Gautam Buddha (*Hindi*)

रु. 8.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित

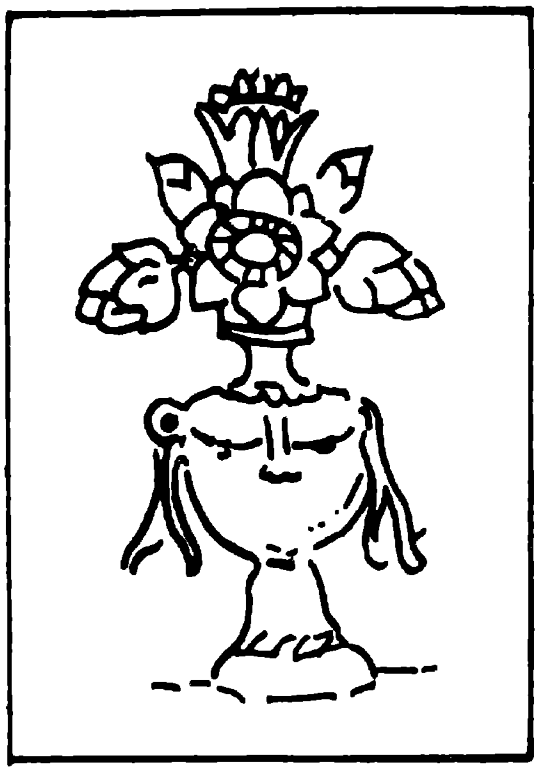
नेहरू बाल पुस्तकालय

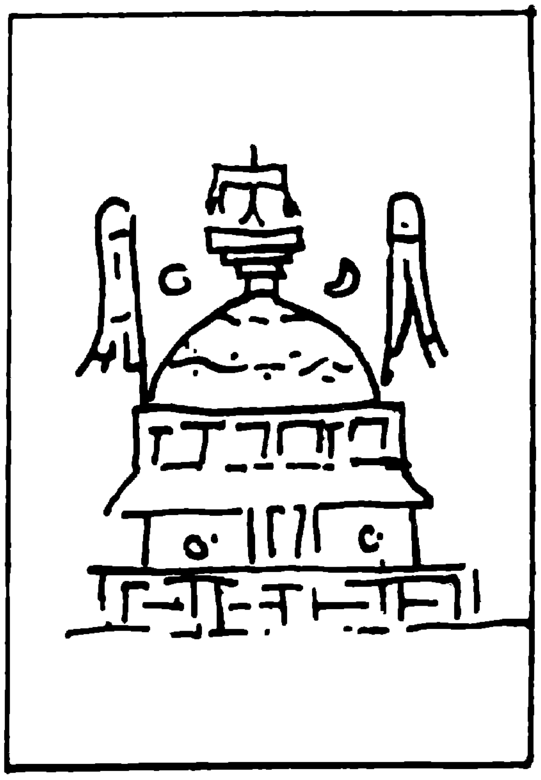
गौतम बुद्ध

लीला जॉर्ज

अनुवाद
गायत्रीनाथ पंत

चित्रकार
डी. एन. ब्रह्मा



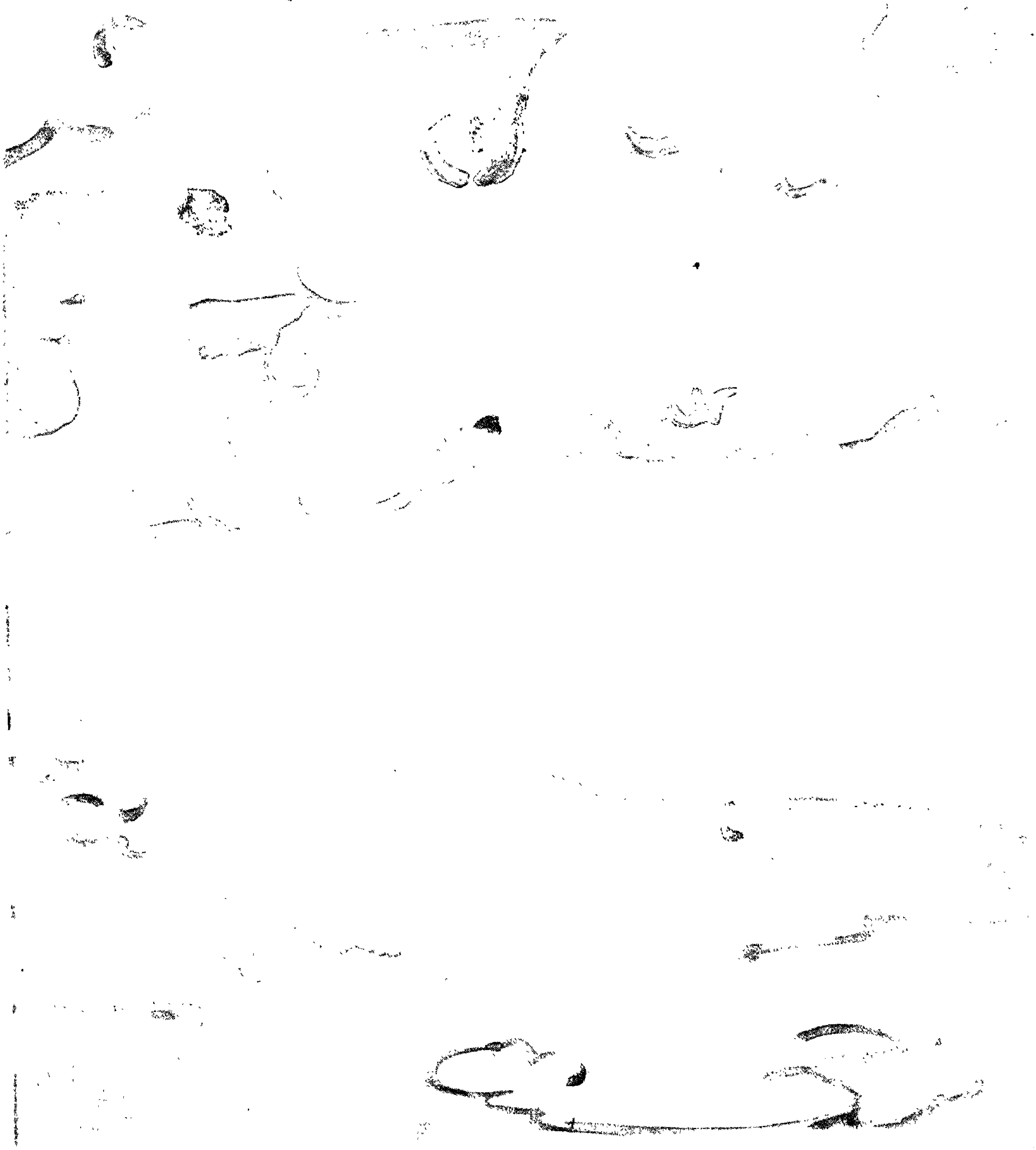


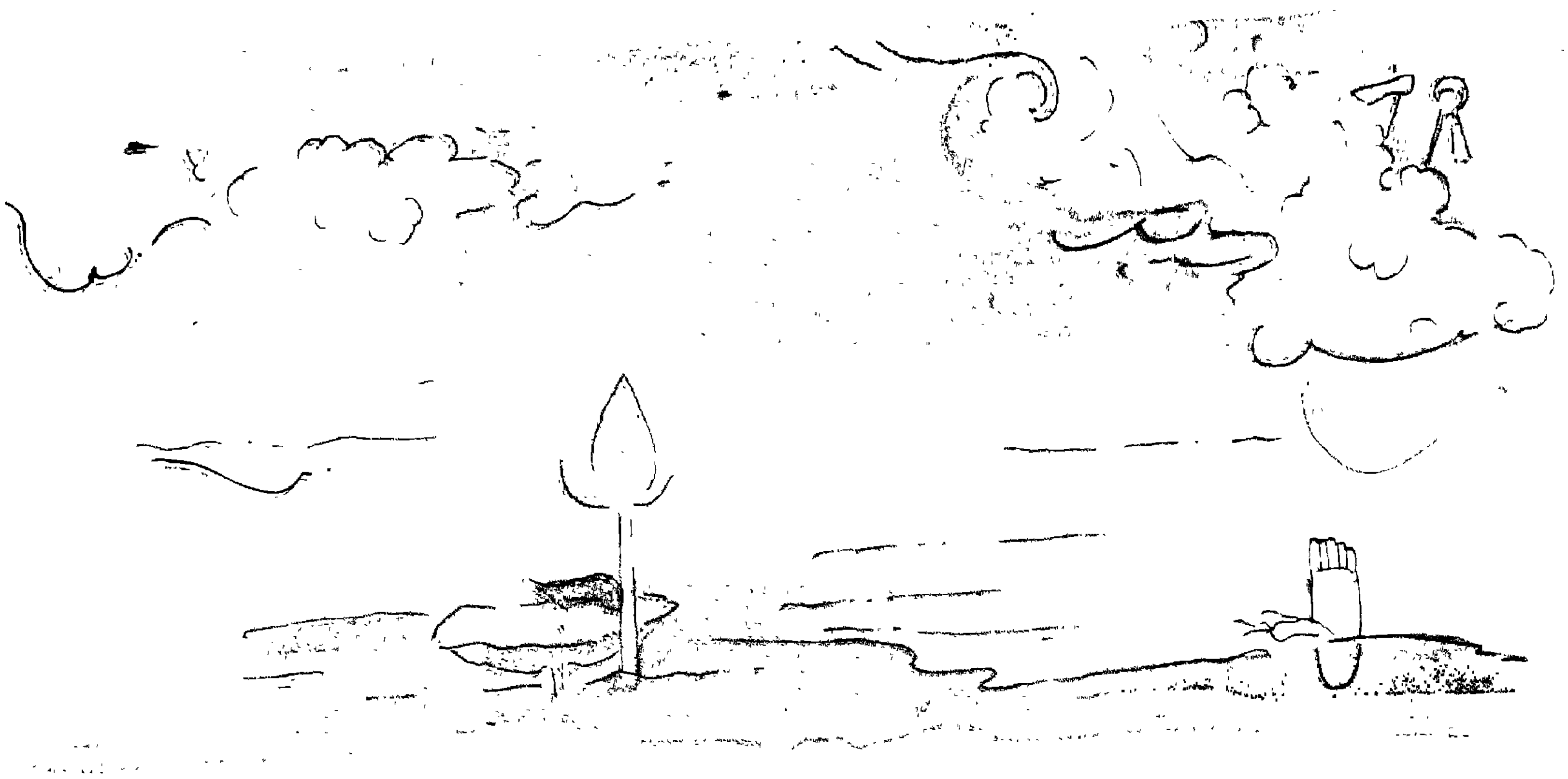
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया



राजकुमार सिद्धार्थ

दो हजार पाँच सौ वर्ष से भी पहले भारत में, हिमालय पर्वत की छाया में कपिलवस्तु नाम का एक नगर था। यह शाक्यों की राजधानी थी। इसके शासक थे शुद्धोधन। महामाया उनकी महारानी थीं।





एक बार महामाया ने एक विचित्र स्वंप्न देखा। उन्होंने देखा कि चार राजा उन्हें उठाकर ले गये और चाँदी के पहाड़ पर एक झील के पास उतार दिया। उन्हें उस झील में स्नान कराया गया, फिर सुंदर-सुंदर वस्त्र पहनाए गए और फूलमालाओं से सजाया गया। इसके बाद स्वर्ग के एक महल में ले जाकर सोने के पलंग पर लिटा दिया गया। उसी समय एक सफेद हाथी अपनी सूँड में कमल लिये हुए उनके पास आया। उस हाथी ने तीन बार महामाया की परिक्रमा की और फिर उनके गर्भ में प्रवेश कर गया।

दूसरे दिन विद्वान पंडितों ने स्वप्न का अर्थ यह बताया कि महारानी एक पुत्र को जन्म देने वाली हैं। और यही हुआ।

जब प्रसव का समय निकट आया तो उस समय की परम्परा के अनुसार महामाया पुत्र जन्म के लिए अपने मायके गयी, पर वह अपने माता-पिता के घर पहुँच भी न पाई थी कि लुम्बिनी नामक स्थान पर साल वृक्षों के कुंज में सिद्धार्थ का जन्म हो गया।



रानी महामाया अपने नन्हें पुत्र के साथ कपिलवस्तु वापस लौट आयी। राजा शुद्धोधन ने बड़े ही उत्साह के साथ माँ-बेटे का स्वागत किया एवं सारे राज्य में खुशियाँ मनायीं गयीं।

कुछ ही समय बाद आश्रम से चलकर असित नामक एक साधु वहाँ आये। उन्होंने नवजात राजकुमार को अपनी गोदी में उठा लिया और अकस्मात बोल उठे, ''यह बालक सचमुच महान है।''

पर तुरंत ही वे फूट-फूट कर रोने लगे। राजा शुद्धोधन चिंता में पड़ गये। वे उन आँसुओं का कारण समझ ही न सके। उन्होंने घबराकर पूछा, ''मेरे पुत्र पर ऐसा कौन-सा संकट आने वाला है?''

''मैं इस बालक के लिए नहीं रो रहा हूँ'', असित ने कहा, ''मैं तो अपने ऊपर रो रहा हूँ। एक दिन यह बालक सारे विश्व को ज्ञान का प्रकाश देगा। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ और वह दिन देखने के लिए जीवित नहीं रह सकूँगा जब सारे संसार में इस बालक के उपदेश गूँजेंगे। मैं इसीलिए रो रहा हूँ।''

इसके बाद असित चले गये। दुर्भाग्यवश सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद ही महामाया का देहान्त हो गया। तब उनकी बहिन प्रजापति गौतमी ने सिद्धार्थ का पालन-पोषण किया।

शुद्धोधन ने देश-विदेश के विद्वान पंडितों को बुलाया। सभी के सामने एक ही प्रश्न रखा गया कि बालक सिद्धार्थ का भविष्य क्या है? वे सभी असित की भविष्यवाणी से सहमत थे उन्होंने कहा, ''वास्तव में यह बालक एक महापुरुष होगा।''

''पर कैसे?'' शुद्धोधन ने पूछा।

एक पंडित ने उत्तर दिया, ''यह विश्व-विजेता बनेगा।''

दूसरे ने कहा, ''यह तो तब संभव है जब यह राजमहल में ही रहे।''

तीसरे ने कहा, ''यह विश्व उपदेशक बनेगा।''

चौथे ने कहा, ''यह तब संभव है जबकि यह राजपाट को त्याग कर योगी बन जाये।''

शुद्धोधन नहीं चाहते थे कि एक उपदेशक के रूप में उनके बेटे का यश दुनिया में फैले। वह तो चाहते थे कि क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए उनका एकमात्र पुत्र विश्व-विजेता बने।

तब पंडितों ने सुझाव दिया, ''यदि आप इस राजकुमार को योगी नहीं बनाना चाहते हैं तो संसार की समस्त वेदनाएं एवं दुखों को इससे दूर रखना होगा।''

इसलिए राजा ने निश्चय किया कि उनके पुत्र को सभी सुख, सभी सुविधाएं, सभी अच्छी चीजें मिलें। उन्होंने तीन महल बनवाये। एक गर्मी के लिए था जिसमें छाया और ठंडी





हवा के लिए दोनों ओर वृक्षों की कतार लगी थीं। दूसरा जाड़े के लिए था जिसमें धूप और गर्मी के लिए खुली सड़कें थीं। तीसरा वर्षा ऋतु के लिए था जिसमें अंदर खेले जाने वाले खेलों के लिए बड़े-बड़े कक्ष थे। हर महल में फूलों के बाग एवं कमल-ताल थे। चारों ओर अंगरक्षक थे जो सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि राजकुमार के सामने केवल वैभव, सुख सौंदर्य एवं विलासिता की चीजें ही आएं।

इन महलों में सिद्धार्थ समृद्धि एवं ऐश्वर्य का जीवन जीने लगे। उन्होंने रेशमीं कपड़ों के अलावा कुछ पहना नहीं और गन्दगी, धूल, गर्मी या जीवन की किसी भी कठिनाई का अनुभव नहीं किया। उनकी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सैकडों नौकर-चाकर थे। वह प्रजा की आँखों के



तारे थे और शक्य सिंहासन के उत्तराधिकारी। लाग उन्ह राजकुमार गौतम के नाम से जानते थे। उनके बचपन के दोस्तों में प्रमुख थे उनका चचेरा भाई देवदत्त एवं उसके राज्य के एक मंत्री का पुत्र कालूदायेन।

बचपन से ही सिद्धार्थ बहुत भावुक एवं क्षमाशील थे। वे मनुष्यों के अलावा पशु-पक्षियों एवं समस्त प्राणिमात्र के लिए दयाभाव रखते थे। छोटा-से-छोटा जीव भी उनकी दया का अधिकारी था।

एक दिन सिद्धार्थ अपने कुछ साथियों के साथ राजमहल के बाग में घूम रहे थे। उसी समय हंसों का एक झुण्ड उनके सिर के ऊपर से उड़ता हुआ गुजरा। अचानक किसी ने तीर चला दिया और उस झुण्ड में से एक हंस तड़पता हुआ नीचे गिर पड़ा।

सिद्धार्थ उस घायल हंस को बचाने के लिए दौड़ पड़े। उन्होंने खून से लथपथ उस पक्षी को प्यार से उठाया, उसके शरीर में चुभा हुआ तीर बाहर निकाला, घाव को धोया एवं उसकी मरहम पट्टी की। उसी समय देवदत्त वहाँ आया और उसने सिद्धार्थ से उस घायल पक्षी को माँगा। सिद्धार्थ ने उस हंस को देने से इंकार कर दिया।

देवदत्त क्रोध से काँपने लगा। उसने राजा शुद्धोधन से शिकायत करते हुए कहा, ''हंस को मैंने मार गिराया, इसलिए उस पर मेरा अधिकार है, पर राजकुमार सिद्धार्थ ने उस हंस को अपने कब्जे में ले लिया है और उसे देने से इंकार कर रहे हैं। मुझे मेरा हंस दिलाया जाए।''

राजा शुद्धोधन स्वयं बाग में गये और कहा, ''सिद्धार्थ , शिकार शिकारी का होता है, क्या इस सिद्धान्त के अनुसार इस हंस पर उसे मार गिराने वाले देवदत्त का अधिकार नहीं है?''

''यह कैसे हो सकता है? मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। देवदत्त ने इस निरपराध पक्षी को जान से मारने की कोशिश की, मैंने इसे जीवनदान दिया। अब आप ही बताइये, इस पर किसका अधिकार ज्यादा है?''

राजा शुद्धाधन अपने पुत्र के तर्क से प्रभावित हुए। उन्होंने निर्णय किया कि सचमुच जीवन देने वाला महान है न कि जीवन लेने वाला। हंस सिद्धार्थ के पास ही रहा।

जब सिद्धार्थ थोड़े–बड़े हुए तो उनको पढ़ाने के लिए बहुत ही योग्य अध्यापकों को नियुक्त किया गया। वह बहुत ही तीव्रबुद्धि के थे और पढ़ाया हुआ हर पाठ बहुत ही जल्दी

याद कर लेते थे। उन्होंने केवल लिखने और पढ़ने में ही दक्षता नहीं हासिल की वरन् बहुत शीघ्र ही राजकुमारों के लिए उपयुक्त अन्य कलाओं जैसे कुश्ती, धनुर्विद्या, तलवारबाजी एवं घुड़सवारी में भी कमाल हासिल कर लिया।

राजकुमार सिद्धार्थ देखने में भी बहुत सुंदर थे। जो भी उन्हें देखता उनके रूप पर मुग्ध हो जाता। एक दिन किसी परिवारिक उत्सव में सिद्धार्थ की दृष्टि राजकुमारी यशोधरा पर पड़ी। यशोधरा भी उन्हीं के वंश की थीं और थीं भी बहुत सुंदर। दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे।

उस समय की परंपरा के अनुसार यशोधरा के पिता ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए धनुर्विद्या की प्रतियोगिता का आयोजन किया। शर्त यह थी कि उसमें सर्वप्रथम होने वाला ही यशोधरा से विवाह कर सकेगा। राजकुमार सिद्धार्थ ने भी इस स्वयंवर में भाग लेने का निश्चय किया।

दूर-दूर से राजकुमार आये हुए थे। सभी यशोधरा के रूप एवं गुण से प्रभावित थे। हर एक चाहता था कि यशोधरा उसी को वरे। अधिकतर राजकुमार बलशाली, धनवान एवं बलवान थे, उनकी तुलना में सिद्धार्थ बहुत ही कोमल और कमनीय लग रहे थे, एक स्वप्नदृष्टा, क्षमाशील एवं सौम्य युवक। उन्हें देखकर किसी को भी यह विश्वास न होता था कि वे इस प्रतियोगिता को जीत भी सकते हैं।

प्रतियोगिता में ज्यों-ज्यों सिद्धार्थ के कौशल, अचूक निशाना लगाने की क्षमता एवं धनुष-बाण पर उनके अधिकार का प्रदर्शन होता गया, लोग सिद्धार्थ की जय-जयकार करते गये। सिद्धार्थ का हर निशाना ठीक, हर बाण अचूक सिद्ध

हुआ। अन्य राजकुमार भी पीछे नहीं थे।

अंत में सिद्धार्थ ने एक विशाल एवं सुदृढ़ धनुष मंगवाया। यह धनुष एक मंदिर में रखा हुआ था एवं इसका नाम 'सिंहहनु का धनु' था। इसकी प्रत्यंचा उस समय तक कोई भी चढ़ा नहीं सका था। फौरन कुछ नौकर दौड़ते हुए गये और मंदिर से उस विशाल धनुष को उठा लाए। धनुष को देखते ही राजकुमारों में खलबली मच गयी। जनता का उत्साह बहुत बढ़ गया।

जब कोई भी राजकुमार उस धनुष की डोरी न चढ़ा सका तब सिद्धार्थ की बारी आयी। उन्होंने देखते ही देखते उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी और खींच कर एक तीर हवा में छोड़ दिया। उसी समय धनुष से घोर गर्जना उठी।

अब निर्णय स्पष्ट था। राजकुमार सिद्धार्थ इस प्रतियोगिता में सर्वप्रथम आये। अन्य राजकुमार निराश हो गये। यशोधरा फूली न समायी। राजा शुद्धोधन भी बहुत प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता का एक कारण उनका यह विश्वास भी था कि शायद इतनी लावण्यमयी एवं लुभावनी यशोधरा को पत्नी के रूप में पाकर सिद्धार्थ राजपाठ को छोड़ने का विचार कभी भी मन में नहीं लायेंगे।

सत्य की खोज

युवराज सिद्धार्थ अपने राजमहल में युवरानी यशोधरा के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। राजा शुद्धोधन अभी भी सावधान थे। उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि सिद्धार्थ को किसी प्रकार की अप्रिय, दुखभरी और वेदनाजनक

चीज या घटना का अनुभव हो ही न पाये। वास्तव में राजकुमार जानते ही न थे कि दुख क्या है, पीड़ा क्या है, कष्ट क्या है।

अचानक एक दिन सिद्धार्थ के मन में राजमहल के बाहर जाने की इच्छा हुई। वे जानना चाहते थे कि आखिर इस राजमहल के बाहर के लोगों का जीवन कैसा है? वे अक्सर किसी एकांत जगह पर बैठ जाते और चिंतन करने लगते। वे अपने से अधिक दूसरों के सुखों के बारे में जानने को उत्सुक थे। जब राजा शुद्धोधन को इस निर्णय का पता लगा तो उन्होंने आपत्ति नहीं की, बल्कि वह सोचने लगे कि एक तरह से यह अच्छा ही है कि राजकुमार अपनी प्रजा से मिल रहा है, अपने साम्राज्य को देख रहा है, आखिर एक न एक दिन तो उसे राजा बनना ही है।

राजा शुद्धोधन ने आदेश दिया कि वे सभी राजमार्ग, जिधर से राजकुमार सिद्धार्थ की सवारी निकले, खूब साफ कर दिये जायें। शहर बिल्कुल साफ कर दिया गया। जगह-जगह स्वागत-द्वार सजाये गये, बंदनवार लगाये गये। हर घर सजा हुआ था। जगह-जगह फूलमालायें और झण्डे लहरा रहे थे। साथ ही इस बात की भी पूरी व्यवस्था कर दी गयी थी कि कोई भी बीमार या दरिद्र या दुखी व्यक्ति राजकुमार के सामने न दिखायी दे। वे नहीं चाहते थे कि इस संसार के किसी भी दुख की छाया भी उनके पुत्र पर पड़े।

चार श्वेत घोड़ों का रथ राजमहल लाया गया। राजकुमार सिद्धार्थ उस पर सवार हुए। सारथी था चन्ह। चन्ह धीरे-धीरे

उस रथ को शहर की सजी-धजी सड़कों पर दौड़ाने लगा। दोनों ओर जनता की भीड़ लगी हुई थी। लोग अपने प्रिय राजकुमार को देखने के लिए उमड़ पड़े थे। जैसे ही राजकुमार का रथ दिखायी पड़ता लोग तालियाँ बजाकर अभिनंदन करते, मालाएं पहनाते। सिद्धार्थ यह सब देखकर गदगद हो उठे।



उन्होंने सोचा कि जनता सचमुच सुखी है, सारा संसार सुखमय है। वह और भी देखना चाहते थे।

"उस ओर चलो", राजकुमार ने सारथी चन्ह को आदेश दिया। चन्ह पहले तो थोड़ा चिंतित हुआ, पर वह आदेश की अवहेलना न कर सका। राजरथ सजी-धजी सड़कों को छोड़कर एक कच्ची सड़क पर उतर गया किसी को भी यह अनुमान न था कि राजकुमार गलियों और कच्ची सड़कों पर जाएंगे। इधर एक दूसरा ही दृष्य था, एक दूसरा ही संसार। सामने से एक जर्जर बूढ़ा लाठी टेकता हुआ, भीख माँगता हुआ दिखायी दिया। राजकुमार ने कभी किसी बृद्ध भिखारी या निर्धन को नहीं देखा था। उन्होंने सारथी से पूछा, "यह कौन है?"

"एक बूढ़ा व्यक्ति", चन्ह ने उतर दिया।

सिद्धार्थ को यह भी मालूम नहीं था कि बुढ़ापा क्या है? लोग क्यों बूढ़े होते हैं? उस बूढ़े को देखकर राजकुमार की आंखें खुल गयीं, उन्हें पता लग गया कि संसार क्या है।

राजमहल में वापस आते ही राजकुमार उदास हो गये। जैसे ही राजा शुद्धोधन को राजकुमार के नैराश्य का पता चला उन्होंने तुरंत ही सुंदर-सुंदर नृत्यांगनाएं, संगीतकार एवं उनका मनोरंजन करने वाले कलाकार राजकुमार के पास भेज दिये। थोड़ी देर तक राजकुमार का मन अवश्य बहला और वे प्रसन्न हुए, पर संसार में व्याप्त दुखों का स्मरण करते ही वे दुबारा उदास हो गये। वे दुनिया को और गहराई से देखना चाहते थे।

उनकी दूसरी यात्रा की व्यवस्था की गयी।



पहले की ही तरह जनता ने पूरे उत्साह के साथ राजकुमार का स्वागत किया। एक क्षण के लिए सिद्धार्थ को भी पुनः यह भ्रम हो गया कि सभी सुखी हैं, सभी प्रसन्न हैं। पर जैसे ही शाही रथ मुड़ा कि राजकुमार ने एक रोगी को देखा। बीमारी से टूटा हुआ वह व्यक्ति हाँफ रहा था और लड़खड़ाते हुए कदमों से धीरे-धीरे चल रहा था। राजकुमार को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने चन्ह से पूछा, "यह कौन है?"

चन्ह का उत्तर था, 'यह एक रोगी व्यक्ति है।"

राजकुमार के मन पर वज्रपात हुआ। कोई भी व्यक्ति रोगी हो सकता है? रोग का अर्थ है दुख, पीड़ा मजबूरी। यानी संसार दुखों का घर है। पर इन दुखों का कारण क्या है? उन्होंने तीसरी बार नगर की यात्रा करने का निश्चय किया। इस बार उन्होंने एक शव देखा जिसे लोग कंधों पर उठाकर श्मशान घाट ले जा रहे थे। चन्ह ने बताया, "यह मनुष्य मर गया है।"

"बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु, "राजकुमार सोचने लगे। संसार में दुख ही दुख हैं, सभी परेशान हैं, सभी पीड़ित हैं। कोमल राजकुमार के हृदय को गहरा आघात लगा।

एक बार फिर जब राजकुमार नगर भ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए एक व्यक्ति को देखा। चन्ह ने बताया कि यह साधू है। राजकुमार ने देखा कि उस साधू ने वैराग्य ले लिया था. अतः वह संसार के सुख-दुखों से निर्लिप्त था। राजकुमार के हृदय में आशा का संचार हुआ। उन्होंने एक अखंण्ड सत्य को खोज लिया था कि संसार दुखों

का घर है, दुखों का कारण वासना है और इन दुखों से छुटकारा पाना ही मानव जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। राजकुमार ने भी राजपाठ एवं भोगविलास को त्याग कर सन्यासी बन जाने का निश्चय किया।

इधर राजकुमार सिद्धार्थ के मन में अंतर्द्वन्द चल रहा था, उधर समाचार मिला कि यशोधरा ने पुत्र को जन्म दिया है। पुत्र का नाम राहुल रखा गया। सिद्धार्थ और भी अधिक उद्वेलित हो उठे। नित्य नवीन मायाजाल में फँस कर जीवन गँवाना उन्हें रुचिकर न लगा। पुत्र का प्रेम भी उन्हें विचलित न कर सका। उन्होंने यथाशीघ्र गृहत्याग का निश्चय कर लिया।

उस समय सिद्धार्थ की आयु 29 वर्ष की थी।

आधी रात को सिद्धार्थ की आँखें खुल गयीं। उनकी पत्नी यशोधरा पास ही सो रही थीं, एक हाथ नन्हें राहुल के ऊपर रखा हुआ था। सिद्धार्थ भी आखिर एक पिता थे। उनकी उत्कट इच्छा हुई कि जाने से पहले आखिरी बार, अपने पुत्र राहुल को गोद में उठाकर चूम लें, पर तभी उन्हें ध्यान आया कि यदि यशोधरा जाग गयीं तो उन्हें कभी अकेले जाने न देंगी। उन्होंने पत्नी एवं पुत्र का मोह त्याग दिया। दृढ़ निश्चय कर राजमहल से निकल गये।

अपने विश्वासपात्र सारथी चन्ह को साथ लेकर सिद्धार्थ राजमहल से जंगल की ओर चले। उन्होंने अपने बाल काट कर राजमहल को भिजवा दिये ताकि सभी को पता चल जाये कि उन्होंने राजसी वैभव को त्याग दिया है। उन्होंने शाही वस्त्रों के स्थान पर साधु के वस्त्र धारण किये और सत्य की

खोज में निकल पड़े।

अब लोग सिद्धार्थ को 'शाक्यमुनि' यानी 'शाक्य वंश के मुनि' के नाम से जानने लगे। भिक्षु के रूप में घूमते हुए वह वैशाली पहुँचे। वहाँ वह सन्त अर्द्धकलाम के आश्रम में कुछ समय रहे। वहीं पर उन्होंने प्राचीन भारतीय षट्दर्शन का अध्ययन किया, पर दर्शन की किसी भी धारा ने उन्हें प्रभावित नहीं किया। उन्होंने, वैशाली को छोड़ दिया और पुनः सत्य की खोज में निकल पड़े।

तत्पश्चात् शाक्यमुनि मगध की प्रख्यात राजधानी राजगृह पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रसिद्ध विद्वान रुद्रक द्वारा स्थापित एक





संस्था में प्रवेश किया। गौतम रुद्रक के महती ज्ञान से अवश्य प्रभावित हुए पर साथ ही उन्हें यह भी आभास हुआ कि कोरे ज्ञान के आधार पर सत्य को पाना संभव नहीं है कुछ समय बाद उन्होंने वह संस्था भी छोड़ दी और चल पड़े शाश्वत सत्य की खोज में।

एक समय गौतम के मन में विचार आया कि शायद तपस्या के द्वारा सत्य की खोज संभव हो। अपने पाँच शिष्यों के साथ गौतम ने जंगल में तपस्या आरंभ कर दी। उन्होंने अपने शरीर को नाना प्रकार के कष्ट दिये। भूख और प्यास से वे जर्जर हो गये पर फिर भी उन्हें सत्य के दर्शन न हुए। तब उन्हें बोध हुआ कि घोर तपस्या का रास्ता भी गलत है और उन्होंने तप करना छोड़ दिया। उनके पाँचों शिष्यों ने

समझा कि गौतम मार्गच्युत हो गये हैं और वे सन्यासी जीवन को त्याग कर शायद दुबारा सांसारिक जीवन बिताना चाहते हैं इसलिए उन सभी ने गौतम का साथ छोड़ दिया।

गौतम ने निकट ही बहने वाली नदी नीरांजना में स्नान किया। तप से वे इतने निर्बल हो गये थे कि नदी की एक साधारण लहर ही उन्हें बहा ले गयी। बड़ी कठिनाई से किनारे पर पहुँचे। उन्हें भूखा देखकर एक कृषक कन्या सुजाता एक कटोरी में खीर ले आयी। गौतम ने खीर खा ली। इससे उन्हें काफी संतोष हुआ और उनके निर्बल शरीर में कुछ ताकत आ गयी।

अन्त में गौतम ने निश्चय किया कि मनन एवं चिंतन द्वारा ही सत्य को खोजा जा सकता है। गया में बरगद के एक वृक्ष के नीचे वह पालथी मार कर बैठ गये और उन्होंने शपथ ली,—"जब तक मैं सत्य की खोज नहीं कर लूँगा, इस स्थान से नहीं उठूँगा।"

गौतम अपनी साधना में लीन हो गये। उन्हें इस तरह मनन-चिंतन करते देखकर राक्षस मार को बहुत क्रोध आया। उसे यह भय था कि यदि गौतम ने सत्य को खोज लिया तो वह उसका प्रचार करेंगे और तब अधिक से अधिक लोग सन्मार्ग पर चलने लगेंगे और अपनी प्रभुत्ता समाप्त हो जायेगी।

मार ने गौतम को तरह तरह के प्रलोभन दिये। गौतम को राजमहल का वैभव, यशोधरा का लावण्य एवं राहुल का प्यार याद आने लगा। पर गौतम विचलित न हुए। उन्होंने अपनी इंद्रियों पर पूरा नियंत्रण रखा और अपनी साधना में जुटे रहे।



तब राक्षस मार ने अपनी माया से भयानक तुफान बवंडर एवं चक्रवात पैदा करके गौतम का ध्यान भंग करना चाहा। गौतम तब भी टस से मस न हुए। तब मार ने अपनी तीन सुंदर पुत्रियों क्रमशः इच्छा, सौख्य एवं वासना को भेजा ताकि वे नाच गाकर सिद्धार्थ का ध्यान भंग कर सकें। पर इन सबका भी गौतम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपनी साधना में पहले की तरह लीन रहे।

उनचासवें दिन गौतम को सत्य का बोध हुआ और तभी से वह 'बुद्ध' कहलाने लगे। जिस बरगद के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था वह पेड़ 'बोधि वृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।



सन्मार्ग

राजकुमार सिद्धार्थ, जो अब गौतम बुद्ध कहे जाने लगे थे। वे संसार में फैली हुई अज्ञानता एवं विषैले अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहते थे। वे जानते थे कि ज्ञान को बाँटना आसान काम नहीं है। परहित की भावना उनमें इतनी उत्कट थी कि उन्होंने सत्य को खोज

कर उसे संसार में फैलाने का निश्चय कर लिया था।

सबसे पहले गौतम बुद्ध को उन पाँच शिष्यों की याद आयी जिन्होंने उनका साथ छोड़ दिया था। वे शिष्य अभी भी वाराणसी के निकट सारनाथ में अपनी तपश्चर्या में लीन थे। इसलिए सबसे पहले गौतम बुद्ध सारनथ की ओर चले।

उन पाँच साथियों ने गौतम बुद्ध को अपनी ओर आते हुए देखा। उनमें से एक ने कहा, "देखो वह आ रहा है गौतम, हमारा शिक्षक।" "वही नास्तिक जो हमें बीच मंझधार में छोड़कर चला गया था?" दूसरे ने व्यंग्य करते हुए कहा। तीसरे ने चुटकी ली, "वाह! यह तो अभी तक संन्यासी का ढोंग रचाये है।" और सभी ने निश्चय किया कि वे गौतम बुद्ध का पूरी तरह बहिष्कार कर देंगे।

गौतम बुद्ध जानते थे कि उनके पाँचों शिष्य उनसे नाराज हैं। उन्होंने बहुत प्रेम से पाँचों को समझाया। वे सभी गौतम बुद्ध से बहुत प्रभावित हुए। तब गौतम बुद्ध ने सारनाथ में ही अपना प्रथम प्रवचन दिया।

गौतम बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश में अपने शिष्यों को बताया कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अर्थात् अधिकता किसी भी चीज में अच्छी नहीं है। अपने शरीर को घोर कष्ट देना उतना ही हानिकारक है जितना कि उसे खूब भोग-विलास में लिप्त रखना। बुद्धिमान वही जो 'मध्यम मार्ग' का अनुसरण करता है। यही सर्वोत्तम मार्ग है। इसी मार्ग पर चलकर मनुष्य सत्य की खोज कर सकता है।

बुद्ध ने घोषित किया कि यह संसार दुखों का घर है, इन दुखों का कारण है वासना अर्थात् भौतिक सुख प्राप्त करने की

इच्छा, और इस दुख के निर्वाण का उपाय है अष्टमार्ग पर चलना। इन्हीं आठ आदर्श नियमों पर चलकर निर्वाण की प्राप्ति संभव है। गौतम बुद्ध के इन्हीं उपदेशों को 'चार आर्य सत्य' के नाम से जाना जाता है।

जिस 'अष्टमार्ग' की घोषणा गौतम बुद्ध ने की है वे हैं: सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् ,वाणी, सम्यक्कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। यही धम्म है, यही सन्मार्ग है। गौतम बुद्ध ने मानव



समाज को इसी सत्य मार्ग का अनुसरण करने को कहा।

सारनाथ में दिया गया प्रथम धर्म उपदेश तो प्रारंभ मात्र था। गौतम बुद्ध ने अपना समस्त शेष जीवन देश के विविध स्थानों पर घूम-घूम कर अपने ज्ञान का प्रसार करने में व्यतीत किया। उस समय प्रबुद्ध लोगों की भाषा संस्कृत थी

पर बुद्ध ने जनता की आम भाषा पाली में ही अपने प्रवचन दिये ताकि वे सर्वसाधारण के लिए सुलभ हों।

गौतम बुद्ध की शिक्षाएं सरल एवं सामान्यजन के लिए हैं। गौतम बुद्ध कर्म एवं आवागमन के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। आत्मा अमर है। मृत्यु के बाद मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर ही मनुष्य के वर्तमान जन्म का निर्धारण होता है। जो इस जन्म में जैसे कर्म करेगा उसी के अनुसार अगले जन्म में उसे फल मिलेगा।

केवल निर्वाण ही मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है। एक बार निर्वाण प्राप्त कर लेने से आत्मा जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाती है, तब मनुष्य स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है। निर्वाण तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जीवन सन्मार्ग पर चला जाये; बुराइयों से दूर रहा जाये एवं गौतम बुद्ध के बतलाये हुए अष्टमार्ग को अपनाया जाये।

बुद्ध अहिंसा के अवतार थे। उनके मत में सभी प्राणियों का जीवन महत्वपूर्ण है और किसी भी जीव का वध करना महानतम पाप है। हिंसा का अर्थ केवल हत्या करना ही नहीं वरना विचारों, शब्दों एवं कर्मों से किसी को नुकसान पहुँचाना भी एक प्रकार की हिंसा ही है।

मनुष्य का पहला कर्त्तव्य यह है वह स्वयं अनुशासित हों। बगैर अनुशासन के एक आदर्श जीवन संभव ही नहीं है। उन्होंने कहा था, "जो मनुष्य समय से काम नहीं करता, अवसर आने पर जागरूक नहीं रहता वह अविवेकी है, आलसी है और वह कभी भी ज्ञान का मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता है।"

क्षमा जीवन का सबसे बड़ा गुण है। हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि घायल पक्षी को जीवन दान देकर क्षमा एवं दया का पाठ उन्होंने बचपन से ही पढ़ लिया था। उनका कहना था, ''जिस प्रकार से कोई माँ जीवन भर अपने इकलौते पुत्र की भलाई के लिए प्रयास करती रहती है उसी प्रकार का प्रेम मनुष्य को प्राणिमात्र से करना चाहिए।''

प्रेम से सभी को जीता जा सकता हे, हिंसा एवं घृणा से नहीं। हिंसा का निराकरण अहिंसा है, उसी प्रकार घृणा का निराकरण प्रेम है। घृणा का प्रतिकार घृणा नहीं वरन् प्रेम है।

संघ

सारनाथ के प्रथम उपदेश को सुनते ही पाँचों शिष्यों ने बुद्ध धर्म में दीक्षा ले ली और बुद्ध बन गए। ये बौद्ध धर्म के सर्वप्रथम भिक्षु कहलाए और इन्होंने एक संघ की रचना की। बाद में अनेकों लोगों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षु बनकर संघ में शामिल हो गये।

उस समय बनारस में यश नाम का एक बहुत ही धनवान व्यक्ति रहता था। इतना धन होने पर भी यश जीवन से असंतुष्ट था। एक दिन उसने घर त्याग दिया। वह दिशाहीन घूम रहा था तभी उसकी मुलाकात गौतम बुद्ध से हो गयी। यश गौतम बुद्ध के आलौकिक व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और उसने बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली। वह संघ में शामिल हो गया।

यश को ढूँढते-ढूँढते उसका पिता आया। जब गौतम बुद्ध से उसकी भेंट हुई तो वह भी बुद्ध का शिष्य बन गया। पर यश के पिता ने भिक्षु बनना स्वीकार नहीं किया, बल्कि अपने परिवार के साथ ही रहता रहा। एक बार गौतम बुद्ध यश के घर पहुँचे। उन्होंने उसको अष्टमार्ग बताया। यश की माता और पत्नी दोनों ही बौद्ध हो गयीं।

गौतम बुद्ध नहीं चाहते थे कि उनके सभी अनुयायी भिक्षु बन ही जायें। जो लोग घर-गृहस्थी त्याग कर भिक्षु या भिक्षुणी बनना चाहते थे वे अवश्य बनें पर जो गृहस्थ जीवन जीना चाहते थे उन पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था, पर उन्हें अष्टमार्ग एवं पंचशील का अनुसरण जरूर करना चाहिए। इस प्रकार संघ में शामिल न होने वाले, पर बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने वाले व्यक्तियों को 'साधारण शिष्य' घोषित किया गया। लाखों लोग साधारण शिष्य बन गये। इन शिष्यों के लिए भी 'बुद्ध', बुद्ध का 'धम्म' एवं बुद्ध द्वारा स्थापित 'संघ' इन तीनों को मान्यता देना अनिवार्य था।

संघ के विकास में बुद्ध ने बहुत रुचि ली। उन्होंने स्वयं कतिपय अनुशासित भिक्षुओं का एक दल बनाया। इन भिक्षुओं

ने देश विदेश में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार किया।

बाद में बुद्ध कई अन्य साधुओं से मिले और उनमें से अधिकांश को उन्होंने बौद्ध धर्म में शामिल कर लिया। इनमें से एक प्रमुख नाम कश्यप है जो अग्निपूजक साधु थे। बौद्ध धर्म की दीक्षा के बाद वे भिक्षु महाकश्यप बन गये और बुद्ध के बाद वे ही संघ के प्रमुख संगठनकर्ता बने।

कश्यप के साथ उनके पाँच सौ शिष्यों ने भी बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। इसके बाद कश्यप के दो भाइयों ने



भी अपने क्रमशः तीन सौ एवं दो सौ शिष्यों के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली। धीरे-धीरे संघ बढ़ने लगा एवं सुसंगठित होने लगा और बुद्ध की शिक्षाएं एवं उनका धर्म दिगदिगन्त में गूँजने लगा।

कुछ समय पश्चात गौतम बुद्ध अपने शिष्यों के साथ

मगध की राजधानी राजगृह पहुँचे। जब मगध के सम्राट बिम्बसार को गौतम बुद्ध के आगमन की सूचना मिली तब वे अपने अनेकों दरबारियों के साथ उनकी अगवानी करने पहुँचे।

गौतम बुद्ध ने उनका स्वागत किया और उनके समक्ष प्रवचन किया। सम्राट बिम्बसार एवं उनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। सम्राट बिम्बसार इतने अधिक प्रभावित हुए कि वह कहने लगे, "आज मैं धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया। बुद्ध की ये शिक्षाएं मेरे साम्राज्य से भी



बढ़कर हैं और मैं जीवन पर्यन्त उनका पालन करूंगा।"

तब सम्राट बिम्बसार ने निवेदन किया, "महाप्रभु! मैं आपका हृदय से आभारी रहूँगा यदि आप अपने शिष्यजनों के साथ हमारे राजमहल में भोजन करने पधारें।"

"हम बड़ी प्रसन्नता से आयेंगे," गौतम बुद्ध ने उत्तर

दिया।

सम्राट बिम्बसार ने गौतम बुद्ध एवं उनके साथियों के स्वागत के लिए बृहद् आयोजन किया। मार्ग में जगह-जगह पर स्वागत द्वार बनाये गये। अगवानी करने हेतु सम्राट स्वयं राजमहल के द्वार पर आये और उन सभी को एक सुसज्जित हाल में ले गये। गौतम बुद्ध को एक ऊँचे आसन पर बिठाया गया और सम्राट ने अपने हाथों से उन्हें भोजन परोसा।

भोजन के पश्चात सम्राट ने गौतम बुद्ध को कुछ उपहार देने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा,"मैं महाप्रभु गौतम बुद्ध को अपना वेलुवन नामक उद्यान भेंट करना चाहता हूँ, मुझे विश्वास है कि तथागत उसे स्वीकार करेंगे।"

गौतम बुद्ध ने वह भेंट स्वीकार कर ली। उन्होंने राजगृह शहर के निकट ही उस वेलुवन उद्यान में प्रथम बौद्ध विहार की स्थापना की। इन विहारों में गौतम बुद्ध एवं उनके साथी भिक्षु रहते थे एवं पूजा-मनन करते थे।

उस समय भिक्षुओं में, चाहें वे किसी भी मत के हों, यह प्रथा प्रचलित थी कि वर्षाकाल के तीन महीने वे भ्रमण नहीं करते थे। ये तीन महीने वे किसी मंदिर में या धर्मशाला में बिताते थे और मनन-चिंतन करते थे। बौद्ध भिक्षु ये तीन महीने विहारों में बिताने लगे।

राजगृह की इसी यात्रा के दौरान गौतम बुद्ध ने सारिपुत्र एवं मोग्गलान को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। बाद में ये दोनों संघ के महान भिक्षु बने। सारिपुत्र एवं मोग्गलान दोनों बचपन से मित्र थे और दोनों ने ही सत्य की खोज करने के लिए घर त्याग दिया था और साधु बन गये थे। उन दोनों में यह शर्त

थी कि जिसे सत्य का ज्ञान पहले हो जायेगा वह तुरंत दूसरे को बता देगा।

एक दिन भटकते-भटकते सारिपुत्र की भेंट अस्साजी से हो गयी। अस्साजी उन पाँच शिष्यों में से एक थे जिन्होंने सर्वप्रथम बौद्ध भिक्षु बनने की दीक्षा ली थी। तब सारिपुत्र ने पूछा, ''भन्ते! आपका गुरू कौन है? आप किस धर्म के अनुयायी हो?''

''मैं शाक्यमुनि के धर्म का अनुयायी हूँ,'' अस्साजी ने उत्तर दिया।

''उनकी शिक्षाएं क्या हैं?'' सारिपुत्र ने जिज्ञासा प्रकट की।

तब अस्साजी ने गौतम द्वारा बताये गये 'धम्म' की व्याख्या की। ''यही वह सत्य है जिसकी तलाश में मैं दर-दर भटक रहा था,'' सारिपुत्र ने प्रवचन सुनने के बाद कहा।

सारिपुत्र तुरंत अपने मित्र मोग्गलान के पास पहुँचे। उन्होंने उस सत्य को अपने मित्र को बताया। मोग्गलान भी 'धम्म' की उस व्याख्या से प्रभावति हुए। फिर दोनों मित्र गौतम बुद्ध के पास पहुँचे और दोनों को ही भिक्षु बनाकर संघ में शामिल कर लिया गया।

घर वापसी

ज्ञान-प्राप्ति के कुछ ही वर्षों के बाद गौतम बुद्ध का नाम देश के कोने-कोने में गूँज उठा। उनके फैलते हुए यश को उनके वृद्ध पिता शुद्धोधन ने भी सुना। शुद्धोधन अभी भी गौतम के गृहत्याग से प्रसन्न नहीं थे। उनकी इच्छा थी कि एक बार उनके पुत्र गौतम कपिलवस्तु आयें, भले ही थोड़े

समय के लिए ही सही। शुद्धोधन को अभी भी यह विश्वास था कि एक बार राजमहल में वापस आकर गौतम बुद्ध भिक्षु का चोला उतार देंगे एवं उनके उत्तराधिकारी बनकर राजपाठ चलायेंगे।

जब शुद्धोधन को यह पता चला कि गौतम बुद्ध राजगृह में प्रवचन कर रहे हैं तो उन्होंने अपने एक विश्वासपात्र मंत्री एवं एक हजार आदमियों को राजगृह भेजा ताकि वे गौतम बुद्ध से कपिलवस्तु आने का आग्रह करें। जिस समय गौतम बुद्ध राजगृह में एक विशाल सभा को संबोधित कर रहे थे उसी समय ये लोग वहाँ पहुँचे। उन्होंने भी गौतम बुद्ध का उपदेश सुना। वे सभी इतने अधिक प्रभावित हुए कि उस। समारोह में सभी ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया और सभी ने गृह त्याग कर बौद्ध भिक्षु बन जाने की प्रतिज्ञा की। वह मंत्री एवं हजार व्यक्ति यह भूल गये कि वे किस उद्देश्य से राजगृह आये थे, वे सभी के सभी भिक्षु हो गये और सम्राट शुद्धोधन का निमंत्रण गौतम बुद्ध तक कभी नहीं पहुँचा।

तब सम्राट शुद्धोधन ने गौतम बुद्ध के बचपन के मित्र कालूदयिन को राजगृह भेजा ताकि वह समझा-बुझाकर एक बार गौतम बुद्ध को कपिलवस्तु ले आयें। जब राजगृह में कालूदयिन ने गौतम बुद्ध के प्रवचन को सुना तो वह भी बहुत प्रभावित हुआ एवं उसने भी अपना धर्म परिवर्तन कर लिया। पर कालूदयिन अपने आने का उद्देश्य नहीं भूला। एक दिन जब गौतम बुद्ध एक उद्यान में विश्राम कर रहे थे तो कालूदयिन ने धीरे से कपिलवस्तु का प्रसंग छेड़ दिया। उन्होंने कहा, ''महाप्रभु कपिलवस्तु में आपके पिता शुद्धोधन, आपकी

मौसी प्रजापति एवं आपकी धर्मपत्नी यशोधरा सभी आपसे मिलने को उत्सुक हैं, मैं आपको कपिलवस्तु चलने का निमंत्रण देने के लिए भेजा गया हूँ।''

''मैं कपिलवस्तु अवश्य जाऊँगा,'' यह कहकर गौतम बुद्ध ने कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया। कालूदयिन ने आगे दौड़ कर सम्राट शुद्धधोन को गौतम के कपिलवस्तु आने की सूचना दी।

सम्राट शुद्धोधन अपने मंत्रियों, दरबारियों एवं प्रजाजनों के साथ गौतम बुद्ध का स्वागत करने राजमहल के बाहर आये। अपने पुत्र के चेहरे पर व्याप्त आलौकिक प्रभामंडल से सम्राट आश्चर्यचकित रह गये। सम्राट अपने रथ से उतरे और उन्होंने दौड़कर अपने पुत्र गौतम को अंक में भर लिया। भावविह्वल होकर सम्राट कहने लगे, ''पुत्र, अब मुझे कोई दुख नहीं है, कोई अभाव नहीं है। तुमने सारी मानवता की रक्षा का मार्ग प्रशस्त किया है।''

क्योंकि गौतम बुद्ध एवं उनके साथियों ने गृह त्याग दिये थें अत: उनके लिए राजमहल में ठहरना संभव न था। सम्राट ने ःहर के निकट ही निरोध उद्यान में उन सबके ठहरने की व्यवस्था की और उन्हें लेकर चले।

आम जनता उमड़ पड़ी। निरोध उद्यान खचाखच भर गया। सभी गौतम बुद्ध के दर्शन करना एवं उनके उपदेश सुनना चाहते थे। उधर कुछ शाक्य वंश के प्रतिष्ठित लोग शाक्यमुनि से नाराज थे। उनके विचार में भिक्षु बनकर गौतम बुद्ध ने शाक्यवंश का अपमान किया था। वे सब बहुत क्रोधित थे पर जैसे ही वे लोग गौतम बुद्ध के निकट आये और उनका

दिव्य प्रवचन सुना, वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन सभी प्रतिष्ठित शाक्यों ने तुरन्त ही बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया।

गौतम बुद्ध एक भिक्षु हो गये थे अतः दूसरे दिन प्रातः वे भिक्षापात्र हाथ में लेकर भिक्षा मांगने निकल पड़े। जब यह समाचार सम्राट शुद्धधोन को मिला तो वे मर्माहत हो गये। "मेरा पुत्र मेरी ही राजधानी की सड़कों पर भीख माँगता फिरेगा?" सम्राट ने व्यथित होकर सोचा और तुरंत ही वे अपने पुत्र गौतम को भिक्षा माँगने से रोकने के लिए पहुँचे। यह मेरा एवं मेरी जनता का घोर अपमान है। मैं तुम्हें और तुम्हारे भिक्षुओं के भरण-पोषण के लिए मुँहमाँगी रकम दे सकता हूँ। पर तुम भिक्षा माँगकर मुझे अपमानित न करो." सम्राट ने गिड़गिड़ाकर कहा।

"भिक्षा माँगना ही हम भिक्षुओं का कर्तव्य है," गौतम बुद्ध ने उत्तर दिया।

"यह कैसे हो सकता है? क्या तुम नहीं जानते कि तुम एक राजकुमार हो, एक राज्य के उत्तराधिकारी?" सम्राट ने व्याकुल होकर पूछा।

"नहीं, अब तो मैं केवल एक भिक्षु हूँ और भिक्षु का राज्य नहीं होता,किसी भी सांसारिक वैभव से उसका कोई सरोकार नहीं है", गौतम बुद्ध ने शांत भाव से उत्तर दिया।

सम्राट से उत्तर देते न बना। निःशब्द वे गौतम बुद्ध एवं उनके अनुयायियों को राजमहल के भीतर ले गये। राजपरिवार के अधिकाँश सदस्य उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़े। गौतम बुद्ध की मौसी प्रजापति एवं महल की अन्य स्त्रियाँ भी निकल



आयीं। नहीं आयीं तो केवल यशोधरा। उन्होंने कहा यदि मेरा कुछ अधिकार है तो मुझसे मिलने स्वयं उन्हें मेरे पास आना चाहिए।"

तब शुद्धोधन ने गौतम बुद्ध को सूचित किया, "पिछले सात वर्षों से जबसे तुमने गृहत्याग किया है तुम्हारे वियोग में यशोधरा स्वयं एक तपस्वनी का जीवन व्यतीत कर रही है, अपने बाल कटवा दिये हैं, राजसी वस्त्रों के स्थान पर गेरुवे वस्त्र पहलनती है और एक योगिनी की भाँति जी रही है।"

गौतम बुद्ध यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वे तुरंत ही यशोधरा के कमरे में गये। यशोधरा उनके चरणों में गिर पड़ीं और फूट-फूट कर रो पड़ीं। गौतम बुद्ध यशोधरा की भक्ति एवं साधना से बहुत प्रभाावित हुए। उन्होंने यशोधरा को आर्शीवाद दिया

उनका पुत्र राहुल तब सात वर्ष का हो गया था। राहुल को अपने पिता के बारे में कुछ भी पता न था, वह शुद्धोंधन को ही अपना पिता समझता था। कपिलवस्तु में गौतम बुद्ध के पहुँचने के सातवें दिन यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल को एक राजकुमार की तरह सजा-संवार कर उनके पास भेजा इस उद्देश्य से कि यह निर्णय किया जा सके कि राहुल किसका उत्तरधिकारी बनेगा।

राजकुमार राहुल को अपने पास देखकर गौतम बुद्ध ने अपने शिष्य सारिपुत्र से कहा, "राहुल को संघ में दीक्षित कर लो, यही उसका उत्तराधिकार है।"

विश्व शिक्षक

कुछ दिनों बाद गौतम बुद्ध ने कपिलवस्तु छोड़ दिया और वे अपने धर्म के प्रचार के लिए निकल पड़े। वे जहाँ भी जाते हजारों लोग उनके दर्शन करते, उनके प्रवचन सुनते और प्रभावित हो जाने पर बौद्ध धर्म में दीक्षा ले लेते।

प्रसेनजित कोशल का एक प्रतापी नरेश था। उसके धर्म परिवर्तन की कहानी बहुत

रोचक है। एक दिन प्रसेनजित एक पशु के वध की तैयारी कर रहा था। गौतम बुद्ध स्वयं वधशाला में पहुँचे। गौतम बुद्ध ने उन पशुओं को जीवनदान देने की प्रार्थना की। प्रसेनजित गौतम बुद्ध के तर्क से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने वधशाला के सभी पशुओं को मुक्त कर दिया और स्वयं सम्राट ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली।

बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने वालों में एक प्रमुख नाम अंगुलिमाल का है। अंगुलिमाल एक डाकू एवं हत्यारा था। वह जिस आदमी की हत्या करता था। उसकी एक अंगुली काट कर अपनी माला में पिरो लेता था। इस भयानक हत्यारे के पास गौतम बुद्ध बगैर किसी अस्त्र-शस्त्र एवं रक्षकों के पहुँचे। अहिंसा के पुजारी गौतम बुद्ध के साहस से डाकू अंगुलिमाल आश्चर्यचकित रह गया। बाद में वह स्वयं भी बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया और बौद्ध संघ का एक प्रमुख सदस्य बन गया।

बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने वाली महिलाओं में विशाखा का नाम सबसे आगे है। विशाखा कौशल की राजधानी श्रावस्ती के प्रसिद्ध महाजन धनंजय की पुत्री थी। बचपन से ही अपने पिता एवं परिवारजन के साथ विशाखा बौद्ध धर्म की अनुयायी हो गयी थी। जब विशाखा बड़ी हुई तो उसकी शादी श्रावस्ती के ही एक दूसरे प्रसिद्ध महाजन मिगर के पुत्र के साथ कर दी गयी।

मिगर जैन धर्म का अनुयायी था। उसे बुद्ध और उनके धर्म से चिढ़ थी। जब गौतम बुद्ध के द्वारा श्रावस्ती आने की सचना मिली तो विशाखा ने कहा ''पता चला है कि गौतम

बुद्ध श्रावस्ती आ रहे हैं?"

"तो क्या हुआ?" मिगर ने रूखा सा जवाब दिया।

"क्या तुम्हें नहीं मालूम कि गौतम बुद्ध ने अनेकों भोले-भाले नवयुवकों को बरगला कर उन्हें भिक्षु बना दिया है और उनके घर-बार चौपट हो गये हैं। क्या तुम चाहती हो कि हमारा भरा-पूरा सुखमय घर-बार भी बर्बाद हो जाये?"

"आप इन झूठी बातों पर विश्वास न करें। ऐसी बेसिर-पैर की बातें गौतम बुद्ध के शत्रुओं ने फैलायी हैं जो उनकी ख्याति से ईर्ष्या करते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आगमन मात्र से हमारे घर में सुख एवं समृद्धि होगी,"

"पिताजी, आखिर इसमें हानि ही क्या है? जैसे अन्य भिक्षुक आते हैं वैसे ही हम गौतम बुद्ध का भी स्वागत करेंगे," कहते हुए विशाखा के पति ने अपनी पत्नी के प्रस्ताव का समर्थन किया।

आखिरकार मिगर को मानना ही पड़ा। विशाखा को यह अनुमति मिल गयी कि वह गौतम बुद्ध को घर में आमंत्रित करे। विशाखा चतुर स्त्री थी। उसे पूरा विश्वास था कि यदि एक बार भी उसके सुसर ने गौतम बुद्ध का प्रवचन सुना तो वह निश्चय ही बोद्ध धर्म में दीक्षा ले लेंगे। इसलिए उसने ऐसी व्यवस्था की कि जब गौतम बुद्ध परिवार के सदस्यों को उपदेश देने लगे तो मिगर को भी वहां उपस्थित होना पड़ा।

जैसी कि आशा थी, गौतम बुद्ध की वाणी का इतना गहरा प्रभाव मिगर पर पड़ा कि उसने तुरंत बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया।

जितने दिन भी गौतम बुद्ध श्रावस्ती में रहे, विशाखा,

प्रतिदिन उनके उपदेश सुनने जाया करती थी। एक दिन प्रवचन सुनते-सुनते उसने अपने सिर से एक आभूषण उतार कर वहीं जमीन पर रख दिया। वह गौतम बुद्ध के भाषण में इतना खो गयी कि उसे अपने तन-मन की भी सुधि न रही। वह आभूषण वहीं पड़ा रह गया।

जब भाषण समाप्त हुआ और लोग चले गये तब गौतम बुद्ध के प्रमुख शिष्य भिक्षु आनंद की नजर उस आभूषण पर पड़ी। भिक्षु समझ गये कि इतना बहुमूल्य शीशफूल केवल विशाखा का ही हो सकता है इसलिए उन्होंने अपने एक नौकर के हाथ वह शीशफूल विशाखा के पास भिजवा दिया।

विशाखा ने उसे वापस लेने से इंकार कर दिया। उसने उसे बौद्ध संघ को उपहार में दे दिया।

शीशफूल इतना महंगा था कि श्रावस्ती नगर में कोई भी धनवान व्यक्ति उसे खरीदने का साहस ही न कर सका। तब विशाखा ने अपने ही दान किये हुए आभूषण को स्वयं ही खरीद लिया। उसके बदले दिये गये रुपयों से विशाखा ने गौतम बुद्ध एवं उनके शिष्यों के ठहरने के लिए श्रावस्ती में एक विहार बनवा दिया। इस विहार का नाम 'पूर्वी उद्यान' रखा गया। यह विहार गौतम बुद्ध को इतना प्रिय था कि जब भी वे श्रावस्ती आते थे तो इसी विहार में ठहरते थे।

अनाथपिण्डिक श्रावस्ती का एक धनी व्यापारी था। गौतम बुद्ध से मिलने से पहले से ही वह दानवीर के रूप में सब जगह विख्यात था। वास्तव में इसीलिए लोग उसे अनाथपिण्डिक कहते थे क्योंकि वह हमेशा निर्धनों, असहायों और अनाथों को भोजन (पिण्ड), वस्त्र आदि दिया करता था।





उसका वास्तविक नाम तो सुदत्त था।

एक दिन अनाथपिण्डिक व्यापार के सिलसिले में राजगृह पहुँचा। वहाँ वह अपनी बहन के पास ठहरा। उसने देखा कि उसकी बहन के घर में किसी के स्वागत की ज़ोर-शोर से तैयारियाँ की जा रही हैं। तैयारियाँ इतनी भव्य थीं और इतने बड़े पैमाने पर की जा रही थीं कि अनाथपिण्डिक ने समझा कि शायद उसके बहनोई से मिलने स्वयं सम्राट बिम्बसार आ रहे हैं।

तब उनके बहनोई ने बताया, "गौतम बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ आ रहे हैं।

"वे कहाँ हैं?" अनाथपिण्डिक ने पूछा। गौतम बुद्ध का नाम सुनते ही अनाथपिण्डिक के मन में उनसे मिलने की जिज्ञासा हुई।

"इस समय गौतम बुद्ध सीतावन में हैं," बहनोई ने कहा और इशारे से बताया कि सीतावन शहर से दूर नहीं है।

अनाथपिण्डिक इतना उत्सुक था कि वह सीतावन में जाकर तुरंत गौतम बुद्ध से मिलना चाहता था पर चूँकि रात हो गयी थी इसलिए उसके बहनोई ने उसे सीतावन जाने से रोक दिया। "अभी सीतावन मत जाओ, कल सुबह होते ही चले जाना," बहनोई ने कहा।

अनाथपिण्डिक इतना अधिक उतावला हो चुका था कि सारी रात वह ठीक से सो भी न सका। तीन बार वह उठकर बैठ गया, यह सोचकर कि सबेरा हो गया है, पर हर बार यह देखकर कि अभी रात ही है वह फिर लेट गया। आखिरकार भोर होने से पहले ही वह उठ गया और गौतम बुद्ध के सोकर

उठने से पूर्व ही सीतावन पहुँच गया।

गौतम बुद्ध ने बड़े प्यार से अनाथपिण्डिक का स्वागत किया और उसे 'धम्म' पर उपदेश दिये। दानशील और परोपकारी अनाथपिण्डिक को बौद्ध धर्म स्वीकारने में जरा भी देर नहीं लगी। उसने अपना सारा व्यापार छोड़कर गेरुआ वस्त्र धारण करके भिक्षु बन जाने की इच्छा प्रकट की।

"मैं बहुत धनी हूँ, फिर भी मैं अपना समस्त धन वैभव एवं कारोबार त्याग कर संघ में सम्मिलित होकर बौद्ध भिक्षु बन जाना चाहता हूँ," अनाथपिण्डिक ने गौतम बुद्ध से निवेदन किया।

"तुम्हारे धनी होने में कोई भी बुराई नहीं है। धन बुरा नहीं होता, धन के प्रति अधिक मोह बुरा होता है। मनुष्य को अपने धन का उपयोग परमार्थ में करना चाहिए," गौतम बुद्ध ने समझाते हुए कहा।

"दान तो मैं करता ही रहता हूं और बहुत सारे लोग और संस्थाएं तो केवल मेरे दान के सहारे ही चल रही हैं," अनापिण्डिक ने विनम्रता से उत्तर दिया।

"तब तुम इतने लोगों को असहाय छोड़ कर स्वयं सन्यास लेने की क्यों सोच रहे हो? इन अनाथों को कौन सहारा देगा? एक आदर्श जीवन जीने के लिए गृह त्यागना या भिक्षु बन जाना अनिवार्य नहीं है। यदि कोई गृहस्थी में रहकर सन्मार्ग पर चल सकता है तो भला उसे गृहत्याग करने की क्या आवश्यकता है?" गौतम बुद्ध ने समझाते हुए कहा।

अनाथपिण्डिक गौतम बुद्ध की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महाप्रभु को श्रावस्ती आने का निमंत्रण दिया।

उसने वहाँ वर्षा ऋतु में भिक्षुओं के निवास करने के लिए एक विहार बनाने का आश्वासन दिया।

श्रावस्ती में बौद्ध विहार के लिए अनुकूल जगह तलाश करने के लिए, अनाथपिण्डक अपने साथ गौतम बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य सारिपुत्र को भी ले गये। उन्हें एक जगह पसंद आ गयी जो शहर से अधिक दूर नहीं थी, रमणीक भी थी और चिन्तन मनन के लिए भी बहुत उपयुक्त थी। पर यह जगह राजकुमार जेत की थी। राजकुमार ने इसे बेचने से इंकार कर दिया।

जब अनाथपिण्डक उस वन को खरीदने पर अड़ गया तो उससे पीछा छुड़ाने के उद्देश्य से राजकुमार जेत ने कहा, "ठीक है, यदि इस जगह को खरीदना ही चाहते हो तो भला। जितनी जगह तुम सोने की मुद्राओं से ढक सकोगे उतनी जगह तुम्हारी हो जायेगी।"

अनाथपिण्डक अपने घर गया और गाड़ियों में भर-भरकर अपनी सारी सोने की मोहरें ले आया। उसने उन मोहरों से जमीन को ढकना शुरू कर दिया। पर इतने बड़े उद्यान को सोने की मोहरों से ढक पाना भला कहाँ संभव था? राजकुमार जेत ने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था कि यह जमीन बिकाऊ नहीं है। सोने की मोहर से ढकनेवाली बात तो मैंने मजाक में कही थी।"

पर अनाथपिण्डक टस से मस न हुआ। जब दोनों में कोई समझौता न हो सका तो मामला एक अदालत में पेश किया गया। न्यायधीश ने कहा, "लगता है कि सौदा मजाक में ही किया गया था, पर जब दूसरे व्यक्ति ने इसे गंभीरता से शर्त

पूरी की है तो यह सौदा पक्का माना जायेगा।"

अनाथपिण्डिक ने जैसे-तैसे करके वह जमीन खरीद ली। जेत को बड़े बेमन से वह जमीन बेचनी पड़ी, पर बाद में जब उसे पता चला कि अनाथपिण्डिक उस जमीन पर बौद्ध भिक्षुओं के लिए एक विहार का निर्माण करना चाहता है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी उस विहार के निर्माण कुछ धन दान में देना चाहा।

"यह जमीन तो तुमने खरीद ली है पर इसमें लगे हुए पेड़ मेरे हैं। मैं इन पेड़ों को विहार के उपयोग के लिए दान में देता हूँ," राजकुमार जेत ने घोषणा की।

जेतवन विहार गौतम बुद्ध के अति प्रिय विहारों में से एक था। यहाँ रहकर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण प्रवचन दिये। कई बार इन प्रवचनों को सुनने तथा गौतम बुद्ध के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कौशल नरेश प्रसेनजित अपने दरबारियों के साथ इस विहार में आये। प्रसेनजित अक्सर गौतम बुद्ध के चरणों के पास बैठ जाते और कहते, "महाप्रभु, मुझे और अधिक ज्ञान देकर कृतार्थ करें।"

गौतम बुद्ध ने प्रसेनजित को कई अच्छे परामर्श दिये। जनता के प्रति राजा के कर्तव्यों के बारे में गौतम बुद्ध ने कहा, "अपनी प्रजा को सन्तानवत् प्यार करो। कभी भी उनका दमन एवं शोषण न करो। उन्हें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दो। निर्धन एवं असहाय प्राणियों पर सदैव दयावान रहो।"

एक बार गौतम बुद्ध अपने प्रिय शिष्य आनंद के साथ इस विहार में ठहरे हुए थे। जैसा कि नियम था, आनंद बहुत सवेरे उठ गये और अपना भिक्षापात्र लेकर भिक्षा के लिए निकले

पड़े। रास्ते में उन्हें बहुत प्यास लगी। वे निकट ही एक कुएं के पास गये। वहाँ एक अछूत चंडाल कन्या कुएं से पानी निकाल रही थी।

बहन, मुझको बहुत प्यास लगी है। थोड़ा पानी पिला दो न," आनंद ने निवेदन किया।

"आप मेरे हाथ का पानी कैसे पी सकते हैं? क्या आपको पता नहीं कि मैं एक चंडाल कन्या हूँ, अछूत हूँ," लड़की ने घबड़ा कर उत्तर दिया।

"बहन, मैंने तुम्हारा धर्म या तुम्हारी जाति नहीं पूछी। मुझे उससे कुछ भी सरोकार नहीं। मैं प्यासा हूँ। तुम कोई भी हो, मुझे थोड़ा पानी पिला दो," आनंद ने निर्विकार भाव से उत्तर दिया।

गौतम बुद्ध समाज में जाति-पाति के बंधनों को स्वीकार नहीं करते थे। छुआछुत के वे सख्त विरोधी थे। यही कारण है कि उनके शिष्य आनंद को उस चंडाल कन्या के हाथों जल पीने में कुछ भी संकोच नहीं हुआ।

कुछ कथाएं

गौतम बुद्ध के लंबे भिक्षु जीवन से संबंधित कथाएं बहुत लोकप्रिय है। एक कहानी में देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। एक बार शाक्यों एवं खोलियां के बीच रोहिणी नदी के पानी के बंटवारे के बारे में वैमनस्य हो गया। जब झगड़ा बहुत बढ़ा तब दोनों की सेनाएं

रणभूमि में आमने-सामने आ डटीं। जब गौतम बुद्ध को इसका पता चला तो वह रणभूमि में जाकर दोनों सेनाओं के बीच में खड़े हो गये। तब गौतम बुद्ध ने उन्हें युद्ध का मार्ग त्याग कर अहिंसा का मार्ग अपनाने का परामर्श दिया। उनके प्रवचन का ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों सेनाओं ने आपस में संधि कर ली और भयानक रक्तपात होते-होते बच गया।

एक बार गौतम बुद्ध भिक्षा माँग रहे थे कि एक दुष्ट व्यक्ति उन्हें गालियाँ देने लगा, गौतम बुद्ध शांतभाव से सुनते रहे। जब वह व्यक्ति गालियाँ समाप्त कर चुका तो गौतम बुद्ध ने बड़े प्यार से उससे पूछा, "वत्स, मान लो तुम किसी को कोई वस्तु भेंट करना चाहो पर दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार न करे तो वह वस्तु किसके पास रहेगी?"

"अरे, तब तो वह वस्तु उसी के पास रहेगी जो देना चाहता था," दुष्ट नवयुवक ने उत्तर दिया।

"तब तो मैं तुम्हारी दी हुई गालियाँ स्वीकार नहीं करता। वत्स जिस तरह प्रत्येक आवाज की प्रतिध्वनि उसी आवाज की ही तरह होती है और परछाई अपने पदार्थ की तरह। उसी प्रकार बुरा करने वाले के हाथ बुराई ही आती है," गौतम बुद्ध ने समझाया।

गौतम बुद्ध अपने प्रवचन को सरल और रोचक बनाने के लिए उनमें कहानियाँ तथा उदाहरण भी सुनाते थे। उनकी कही हुई कहानियों में से एक बनारस के राजा की कहानी भी है। बनारस का राजा बहुत शक्तिशाली था। अकारण ही उसने कोशल राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसे पराजित कर दिया। कोशल के राजा एवं रानी ने राजमहल से भागकर

एक कुम्हार के यहाँ शरण ली। इसी कुम्हार के घर राजा-रानी का पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम दिघउ रखा गया।

जब दिघउ थोड़ा बड़ा हुआ तो उसकी कलई खुल गयी। बनारस के राजा ने कोशल के राजा और रानी को बंदी बना लिया और उन्हें मृत्यु-दंड सुनाया। राजकुमार दिघउ किसी तरह बच निकला। जब राजा-रानी को मृत्यु-दंड दिया जा रहा था तब दिघउ भी वहाँ मौजूद था। राजा ने अपने पुत्र को संबोधित करते हुए कहा, "मेरे बेटे, याद रखना घृणा से घृणा को कभी शांत नहीं किया जा सकता। घृणा पर विजय पाने का एक ही रास्ता है और वह है प्रेम।"

जब दिघउ नवयुवक हो गया तो एक संगीतकार के रूप में उसकी ख्याति सब जगह फैल गयी। बनारस के राजा ने उसे अपने दरबार में नौकर रख लिया। धीरे-धीरे बनारस के राजा का विश्वास प्राप्त करके दिघउ एक उच्च पद पर पहुँच गया। एक दिन राजा दिघउ को शिकार पर ले गया। एक सुनसान स्थान पर उस थके हुए राजा ने विश्राम करने की इच्छा प्रकट की और वह दिघउ की गोदी में सिर रखकर लेट गया। थोड़ी देर बाद राजा को नींद आ गयी।

दिघउ को इसी अवसर का इंतज़ार था। उसने झट म्यान से अपनी तलवार निकाली और गरज कर बोला, "तुमने बगैर किसी कारण के मेरे पिता और मेरी माता की हत्या करवायी थी। रे दुष्ट! मैं आज तुझे भी यमलोक पहुँचाता हूँ।"

उसी समय दिघउ को मृत्यु के समय कहे गये पिता के शब्द याद आ गये। दिघउ ने तलवार म्यान के अंदर डाल दी

और भय से काँपते हुए राजा को लेकर राजमहल वापस आ गया। उसके इस क्षमाशील व्यवहार का वाराणसी के राजा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वह पश्चाताप करने लगा। उसने दिघउ को वह सारा साम्राज्य एवं खजाना वापस कर दिया जो बहुत पहले उसके पिता से छीना था साथ ही अपनी पुत्री का विवाह भी दिघउ के साथ कर दिया। गौतम बुद्ध ने यह कहानी सुनाते हुये कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को दिघउ की भांति क्षमाशील होना चाहिये।

'मध्यम मार्ग' की तुलना गौतम कुछ हमेशा एक सुरोली वीणा से करते थे। यदि वीणा के तार ढीले होंगे तो वीणा बजेगी ही नहीं और यदि तार बहुत कस दिये जायें तो वे टूट जायेंगे। इसलिए वीणा के तारों को उतना ही कसना चाहिये जितना आवश्यक हो। उसी प्रकार से जीवन को ढालना चाहिये; न बहुत भोग-विलास और न अत्यधिक कष्ट।"

एक बार एक शिष्य गौतम बुद्ध के पास निर्वाण के विषय में जानने के लिए आया। गौतम बुद्ध ने पास ही कुछ बच्चों की ओर इशारा किया जो रेत में टीले बनाकर आनंदमग्न हो खेल रहे थे। "जब तक ये खेल खेल रहे हैं तभी तक वे इन टीलों को प्यार से बनाते हैं और उनकी सुरक्षा करते हैं", गौतम बुद्ध ने कहा।

"हाँ यह तो है", शिष्य ने उत्तर दिया।

"क्या खेल समाप्त हो जाने के बाद बालक इन्हीं रेतीले टीलों को नष्ट-भृष्ट नहीं कर देंगे?" गौतम बुद्ध ने पूछा।

"जी हाँ! वे अवश्य इसे बिखरा देंगे", शिष्य ने उत्तर दिया।

''भदन्त! उसी तरह जब तक जीवन रहता है तभी तक मनुष्य इन सांसारिक सुखों में लिप्त रहता है। जिस दिन मनुष्य की इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं उसी दिन शरीर मर जाता है और तब आत्मा को निर्वाण प्राप्त हो जाता है,'' गौतम बुद्ध ने स्पष्ट किया।

एक बार गौतम बुद्ध श्रावस्ती की ओर जा रहे थे। मार्ग में किसा गौतमी नामक स्त्री रोती हुई इनके पास आयी और इनके चरणों में अपने बेटे का शव रख दिया। किसा गौतमी का वह इकलौता बेटा था और वह उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी। एक दिन यह बालक बाग में खेल रहा था। कि एक भयंकर साँप ने उसे डस लिया। बालक की तत्काल मृत्यु हो गयी। किसा गौतमी यह देखकर पागल हो उठी। वह अपने मृत पुत्र को उठाकर कई लोगों के पास गयी कि शायद कोई उसे दवा देकर जीवित कर देगा।

''अरे क्या किसा गौतमी का दिमाग खराब हो गया है'', किसी ने पूछा।

उधर से एक राहगीर जा रहा था। उसने किसा गौतमी से कहा, ''कुछ ही दूर पर गौतम बुद्ध नामक एक महात्मा जा रहे हैं जिन्होंने बहुत-से लोगों का दुःख-दर्द दूर किया है। तुम भी उनके पास जाओ, वही तुम्हारा दुःख दूर कर सकते हैं।''

''वह कहाँ है?'' किसा गौतमी ने व्याकुल होकर पूछा।

''वे इसी मार्ग से गुजरने वाले हैं'', राहगीर ने उत्तर दिया।

अपने मृत पुत्र को सीने से लगाये किसा गौतमी पागलों की तरह उसी मार्ग पर दौड़ चली और गौतम बुद्ध को देखते ही

उनके चरणों पर अपना मृत बालक रख दिया। ''महाप्रभु, मुझ दु:खियारी पर दया कीजिये और किसी तरह मेरे पुत्र को जीवित कर दीजिये,'' कातर स्वर में किसा गौतमी ने प्रार्थना की।

''मैं इस बालक को पुनः जीवित कर सकता हूँ पर मुझे मुट्ठी भर सरसों के दाने चाहिये,'' गौतम बुद्ध ने कहा।

''मैं अभी लायी'', कहकर बड़ी व्यग्रता से किसा गौतमी मुड़ने लगी।

पर याद रखना कि ये सरसों के दाने उस घर से लाने होंगे जहाँ कभी किसी की मृत्यु न हुई हो—न माँ की, न पिता की, न पुत्र की, न पति की'', गौतम बुद्ध ने शर्त लगा दी।

किसा गौतमी सरसों के दाने माँगने शहर के प्रत्येक घर गयी।

यह कोई बड़ी बात नहीं थी। कई घरों में सरसों के दाने थे और लोग बड़ी खुशी से उन्हें देने को तत्पर थे।

''पर पहले यह बताओ कि क्या आपके घर में कभी किसी पुत्र या पुत्री, माँ या पिता, संबंधी या मित्र की मृत्यु तो नहीं हुई?'' किसा गौतमी दाने लेने से पहले ही यह पूछ लेती।

''खेद है कि हमारे परिवार में जितने लोग जीवित हैं उनसे कहीं अधिक लोग मर चुके हैं,'' सभी ने करीब-करीब ऐसा ही उत्तर दिया।

अब कुछ भी नहीं किया जा सकता था। गौतमी हताश हो गयी, टूट गयी। पर तभी उसे अपनी भूल पता चली, वह अपने पुत्र के प्यार में अंधी थी अतः उसे सत्य का बोध नहीं हुआ। ''मृत्यु जीवन का ही एक अंग है'', उसने स्वयं से

कहा।

उसने अपने पुत्र को दफ़ना दिया फिर वह गौतम बुद्ध के पास पहुँची। गौतम बुद्ध ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "अब और दुःख मत करो।"

ईर्ष्यालु देवदत्त

ज्ञान प्राप्त होने के पूर्व सिद्धार्थ के बचपन का साथी एवं संबंधी देवदत्त था। देववत्त बहुत ईर्ष्यालु था वह हमेशा सिद्धार्थ को नीचा दिखाना चाहता था। एक दिन देवदत्त ने उसी सफेद हाथी को मार डाला जिसे राजकुमार सिद्धार्थ बहुत प्यार करते थे।

ज्ञान प्राप्त करने के बाद जब गौतम बुद्ध कपिलवस्तु आये तो अनेकों शाक्य प्रमुखों के साथ देवदत्त ने भी बौद्ध संघ में दीक्षा ले ली। गौतम बौद्ध अपने प्रिय सखा एवं रिश्ते के भाई देवदत्त से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे संघ में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया।

गौतम बुद्ध संघ के सर्वोपरि नेता थे पर उनकी ख्याति देवदत्त को फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। वह स्वयं संघ का सर्वेसर्वा बनना चाहता था। एक दिन उसने गौतम बुद्ध से कहा, ''महाप्रभु, आप वृद्ध हो गये हैं और आपको विश्राम की जरूरत है इसलिए आप संघ के प्रमुख का पद त्याग कर वह उत्तरदायित्व मुझको सौंप दीजिये।''

गौतम बुद्ध देवदत्त की कुटिल चाल को समझ गये। उन्होंने शांत भाव से उत्तर दिया, ''नहीं, नहीं जब तक मैं जीवित हूं, मैं संघ की सेवा करता रहूँगा।''

जब देवदत्त को संघ के प्रमुख का पद न मिल सका तो क्रोध में आकर उसने संघ को विभाजित करने का षडयंत्र रचा। उसने अपने कुछ सहयोगियों और विश्वासपात्र मित्रों को मिलाकर, गौतम बुद्ध की मृत्यु के आठ वर्ष पूर्व ही, एक समानान्तर संस्था की स्थापना कर दी। राजगृह में उसे पाँच सौ भिक्षुओं का समर्थन भी मिल गया।

गौतम बुद्ध ने अपने दो शिष्यों, सारिपुत्र और मोग्गलान को उन असंतुष्ट भिक्षुओं से बातचीत करने को भेजा। जब वे दोनों सभास्थल में पहुँचे तो देवदत्त को यह भ्रम हो गया कि शायद ये दोनों प्रमुख शिष्य भी गौतम बुद्ध का साथ छोड़कर उसकी ओर मिल गये हैं। तब देवदत्त ने उन दोनों से प्रार्थना

की कि वे असंतुष्ट भिक्षुओं के समक्ष भाषण दें।

सारिपुत्र और मोग्गलान ने अपने सारगर्भित भाषणों से उन भिक्षुओं के नेत्र खोल दिये। उन्हें अपनी भूल का पता चल गया और वे सभी देवदत्त द्वारा बताये गये गलत मार्ग को छोड़कर दुबारा बौद्ध संघ में शामिल हो गये।

इससे देवदत्त के क्रोध की सीमा न रही। वह गौतम बुद्ध से घृणा करने लगा और उनकी हत्या करने के षडयंत्र रचने लगा। इस काम में उसे मगध के सम्राट बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु से सहयोग मिल गया।

सम्राट बिम्बसार गौतम बुद्ध के सच्चे अनुयायी थे। जब तक वे जीवित रहे देवदत्त को यह लगता रहा कि मगध राज्य में उसे ऊँचा पद नहीं मिल सकता। एक दिन उसने अजातशत्रु को भड़काते हुए कहा,''अरे, तुम्हारा पिता तो अभी भी बूढ़ा नहीं हुआ। यदि यही राज्य करता रहा तो तुम्हारी बारी कब आयेगी?''

''हाँ यह बात तो ठीक है,'' अजातशत्रु ने सोचा।

तब तुम अपने पिता की हत्या करके स्वयं को सम्राट क्यों नहीं घाषित कर देते?

दुष्ट अजातशत्रु देवदत्त के बहकावे में आ गया। उसने सोचा कि मगध सम्राट बनने का यही अवसर है। दोनों ने हाथ मिलाने और एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया।

कुछ ही दिन बाद अजातशत्रु हाथ में खंजर लेकर अपने पिता को मारने के लिए उनके सोने वाले कमरे की ओर चला। दरबारियों एवं अंगरक्षकों ने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया। अजातशत्रु को सम्राट बिम्बसार के सामने पेश किया

गया। बिम्बसार गौतम बुद्ध की शिक्षाओं से इतना अधिक प्रभावित हो चुके थे कि उन्होंने अपने पुत्र को दण्ड देने से इन्कार कर दिया। उन्हें हिंसा पर बिल्कुल ही विश्वास नहीं रह गया था। यही नहीं, वरन् उन्होंने स्वयं ही अपना राजपाट त्याग दिया; अजातशत्रु को सम्राट घोषित कर दिया और स्वयं बौद्धभिक्षु बन गये।

जब अजातशत्रु मगध के सम्राट बने तो राजधानी राजगृह में देवदत्त की तृती बोलने लगी। पर गौतम बुद्ध वर्षा ऋतु के तीन महीने राजगृह में बितायेंगे तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने गौतम बुद्ध की हत्या करने का निश्चय कर लिया।

देवदत्त ने अजातशत्रु की सेना में से चुने हुए धनुर्धर छांट लिये और उन्हें उस मार्ग पर तैनात कर दिया जिधर से होकर गौतम बुद्ध राजगृह आने वाले थे। पर जैसे ही उन धनुर्धरों ने गौतम बुद्ध को देखा, वे उनके अलौकिक तेज से बहुत अधिक प्रभावित हुए। सभी धनुर्धर गौतम बुद्ध के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने प्रायश्चित करते हुए स्वीकारा कि वे गौतम बुद्ध की हत्या करने के लिए ही तैनात किये गये थे। क्षमा के सागर गौतम बुद्ध को जरा भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने सभी को प्यार. से उठाया, गले लगाया और देवदत्त के पास वापस भेज दिया।

अपनी योजना को विफल जानकर देवदत्त अंगारे की भांति धधक पड़ा। अब तो हर संभव तरीके से उसने गौतम बुद्ध का वध करने का दृढ़निश्चय कर लिया। एक दिन गौतम बुद्ध गीध पर्वत के नीचे मनन-चिंतन कर रहे थे।देवदत्त चुपचाप पीछे से जाकर पहाड़ के ऊपर चढ़ गया। उसने वहाँ से एक

भारी पत्थर गौतम बुद्ध की ओर लुढ़का दिया। गड़गड़ाता हुआ वह विशाल पत्थर गौतम बुद्ध की ओर चला पर आधे रास्ते पर वह एक भारी चट्टान से टकरा गया और चूर-चूर हो गया।

अब देवदत्त का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया। गौतम बुद्ध की हत्या करने के उद्देश्य से वह नीलगिरि हाथी के महावतों के पास पहुँचा। नीलगिरि एक मदमस्त, भीमकाय हाथी था। देवदत्त ने उस हाथी के महावतों को मुटठी भर सोने के सिक्के दिये और कहा,"कल जब गौतम बुद्ध इस रास्ते से गुजरें तब तुम नीलगिरि हाथी को उन पर छोड़ देना।"

दूसरे दिन प्राय: हमेशा की तरह गौतम बुद्ध भिक्षा माँगने निकले। जैसे ही महावतों ने गौतम बुद्ध को निकट आते देखा उन्होंने नीलगिरि को छोड़ दिया। क्रोध से चिंघाड़ता हुआ वह हाथी सूँड उठाकर गौतम बुद्ध की ओर झपटा।

पर आश्चर्य कि जैसे ही नीलगिरि ने गौतम बुद्ध को देखा, उसका गुस्सा शांत हो गया। बुद्ध की प्रेमभरी दृष्टि में न जाने क्या जादू था कि वह भयानक पशु भी अपना उद्देश्य भूलकर, सूँड़ नीची करके, एक आज्ञाकारी बालक की तरह गौतम बुद्ध के सामने खड़ा हो गया। गौतम बुद्ध ने प्यार से उसको थपथपाया, और आशीर्वाद भी दिया।

नीलगिरि ने गौतम बुद्ध के चरणों की धूल अपने सूँड़ में उठाकर कई बार अपने शरीर के ऊपर फेंकी और चुपचाप अस्तबल में वापस चला गया।

इस घटना के कुछ समय बाद देवदत्त स्वयं गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। अब देवदत्त को अपनी भूल पर पश्चात्ताप

हुआ। उसकी अंतिम इच्छा थी कि वह गौतम बुद्ध के पास जाकर उनसे क्षमा माँगे और उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। कुछ भिक्षुओं ने सहायता करके देवदत्त को उठाया और उसे गौतम बुद्ध के पास ले चले पर मार्ग में ही उसने दम तोड़ दिया। पर मरते समय उसके होठों पर गौतम बुद्ध का ही नाम था।

महापरिनिर्वाण

गौतम बुद्ध बहुत वृद्ध हो गये। उन्हें किसी सहायक की आवश्यकता अनुभव हुई। कई शिष्य गौतम बुद्ध की सेवा करने को तत्पर थे। ''आपकी सेवा मैं करूंगा'', सारिपुत्र ने अपने को समर्पित करते हुए कहा।

''नहीं, महाप्रभु की सैवा मैं करूंगा'', मोग्गलान ने कहा।

गौतम बुद्ध विचार करने लगे। सारिपुत्र और मोग्गलान दोनों ही संघ के प्रमुख कार्यकर्ता थे संघ के प्रशासनिक कामों के लिए उन दोनों की बहुत आवश्यकता थी। यदि गौतम बुद्ध उन्हें अपनी सेवा में ले लेते तो संघ को बहुत अधिक क्षति पहुँचती। साथ ही वे दोनों भी तो वृद्ध हो चले थे। तभी गौतम बुद्ध को आनंद का ध्यान आया। आनंद नवयुवक थे और अति शांत तथा मृदु स्वभाव के थे। उन्होंने आनंद को ही अपना सहायक बनाया।

आनंद कालांतर में गौतम बुद्ध के सर्वाधिक प्रिय शिष्य बन गये। वे गौतम बुद्ध के जीवन के अंतिम बीस वर्षों तक परछाई की तरह उनके साथ रहे; सेवा करते रहे। अस्सी वर्ष की अवस्था प्राप्त करके भी गौतम बुद्ध भ्रमण करते ही रहे, उपदेश देते ही रहे।

गौतम बुद्ध ने अपने जीवन का अंतिम प्रवास वैशाली के निकट किया। वैशाली लिच्छवि गणराज्य की राजधानी थी। वहाँ गौतम बुद्ध एक आम्रकुंज में टिके। यह आमों का बाग आम्बपाली नामक नर्तकी का था। जब उस नर्तकी को पता चला कि महाप्रभु उसी के आम्रकुंज में पधारे है तो वह उनके स्वागत को दौड़ पड़ी। उसने गौतम बुद्ध और उनके साथ आये भिक्षुओं को अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया।

कुछ ऐसा हुआ कि उसी दिन लिच्छवी साम्राज्य के प्रमुख नेता वहाँ आये। उन्होंने गौतम बुद्ध तथा उनके साथियों को उसी दिन भोजन पर अपने यहाँ बुलाया।

''लेकिन मैंने पहले ही आम्बपाली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, अतः आज आप लोगों के यहां भोज पर नहीं आ

सकूँगा'', गौतम बुद्ध ने निर्विकार भाव से कहा।

''क्या आप एक साधारण नर्तकी को हम लोगों से अधिक महत्व देते हैं, नेताओं ने शिकायत के स्वर में कहा।

पर गौतम बुद्ध की दृष्टि में सभी समान थे। छोटे-बड़े का विचार उन्हें कभी नहीं भाया। गरीब नर्तकी को संभवत: गौतम बुद्ध के आशीर्वादों की कहीं अधिक आवश्यकता थी। उन्होंने लिच्छवि नेताओं का निमंत्रण ठुकरा दिया।

रात्रि के भोजन के पश्चात् गौतम बुद्ध आम्रकुंज में विश्राम करने चले गये। उसी रात गौतम बुद्ध गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। आनंद को ऐसा लगा कि महाप्रभु का अंतिम समय आ गया है। एक निरीह बालक की तरह विलखते हुए वे कहने लगे, ''महाप्रभु, हम लोगों को छोड़कर न जाइये।' आप चले जायेंगे तो हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा?''

''रोते क्यों हो आनंद। मेरे चले जाने के बाद मेरी शिक्षाएं जो हैं; मेरा संग जो है'', गौतम बुद्ध ने सांत्वना देते हुए कहा।

सौभाग्य से इस बीमारी से शीघ्र ही छुटकारा मिल गया पर अपना अंतिम समय निकट जानकर गौतम बुद्ध अधिक सक्रिय हो गये। उन्हें अपने संघ की, अपने भिक्षुओं की चिंता थी जिन्हें छोड़ने का समय निकट आ रहा था। उन्होंने वैशाली के सभी भिक्षुओं को एकत्र किया और अपने जीवन का अंतिम उपदेश दिया।

उन्होंने कहा,''तुममें से प्रत्येक अपना आश्रय स्वयं बनो; अनुशासन रखो; अनुशासन से सन्मार्ग पर चलो। 'अप्प दीपो भव' अर्थात स्वयं दीपक की तरह प्रकाशवान हो।''



वैशाली से रुक-रुक कर गौतम बुद्ध मल्लों की नगरी कुशीनगर पहुँचे। वहाँ उन्होंने चुण्ठ नामक एक लोहार का आतिथ्य स्वीकार किया। उस रात का खाना इतना गरिष्ट था कि गौतम बुद्ध का वृद्ध एवं जीर्ण-शीर्ण शरीर उसे पचा न सका। पर वह नहीं चाहते थे कि चुण्ड के दिल को ठेस पहुँचे इसलिए उस भोजन को भी ग्रहण कर लिया।

दूसरे दिन प्रातः गौतम बुद्ध ने पास ही एक नदी में स्नान किया। उन्होंने आनंद से कहा कि पेड़ की छाया में एक सफेद

चादर बिछा दो। कुछ समय तक उन्होंने वहाँ विश्राम किया। इसके बाद वह मल्ल नेताओं से मिले जो गौतम बुद्ध के दर्शन के लिए वहाँ आये थे। उनके जाने के बाद बुद्ध ने पुनः विश्राम किया।

उसी समय सुबद्ध नामक साधु वहाँ आया। वह उनके साक्षात दर्शन करना चाहता था।

"महाप्रभु बहुत थके हुए हैं और इस समय विश्राम कर रहे हैं", आनंद ने कहा। वह गौतम बुद्ध के विश्राम में विघ्न डालना नहीं चाहते थे।

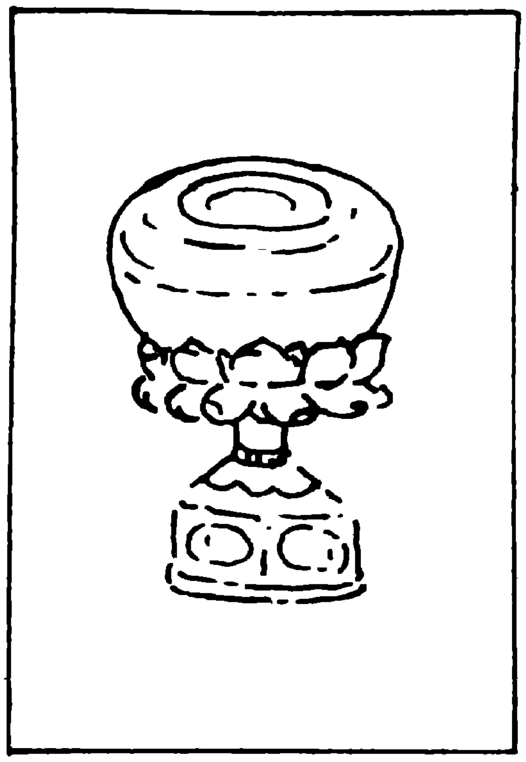
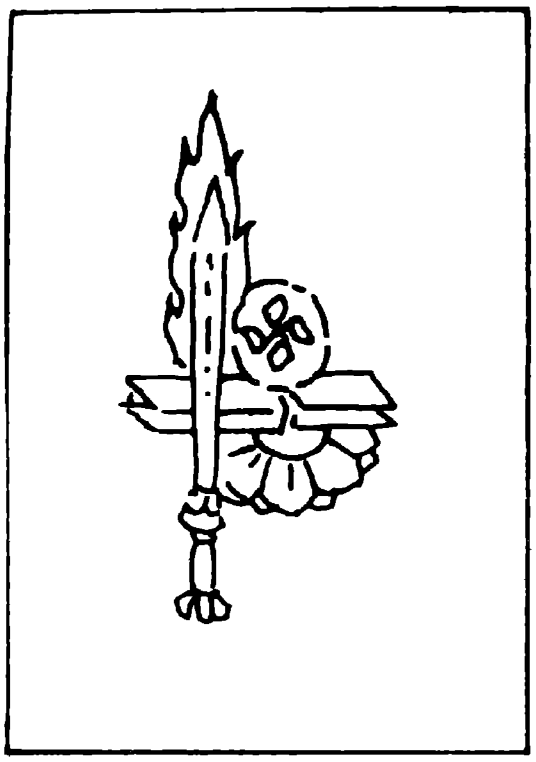
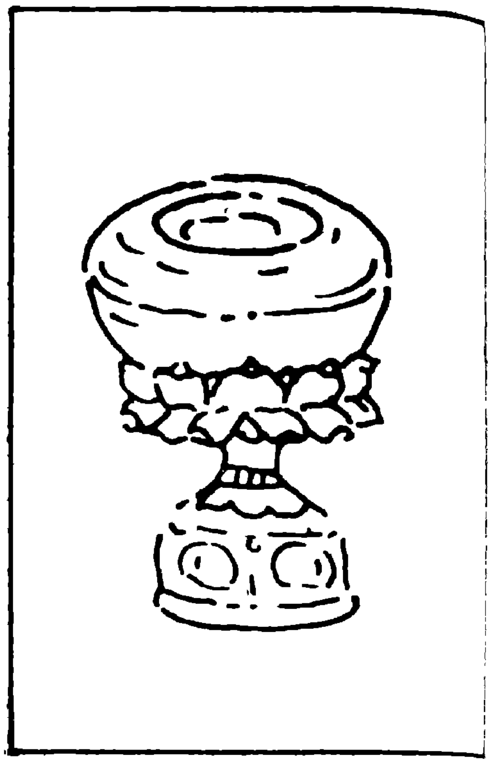
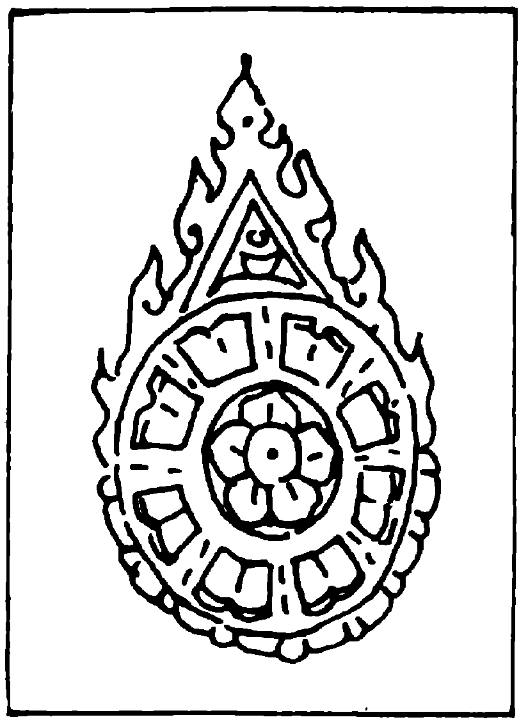
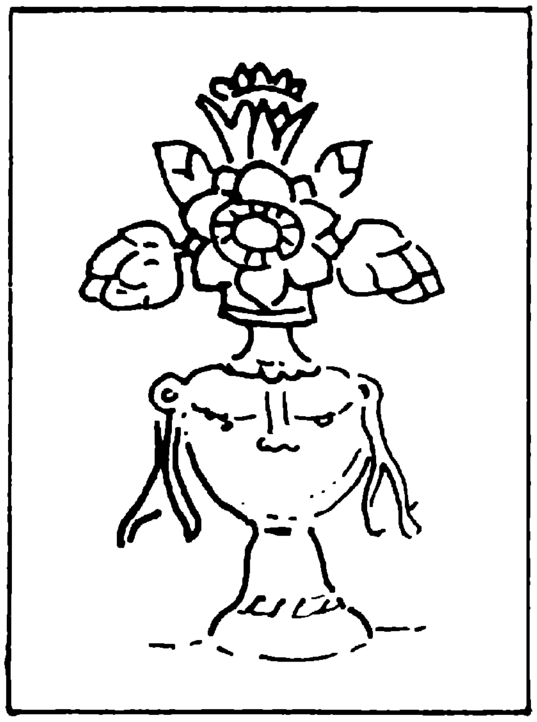
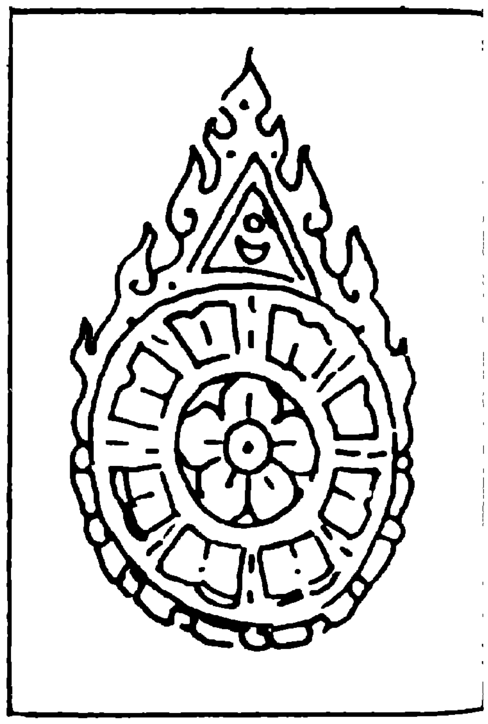
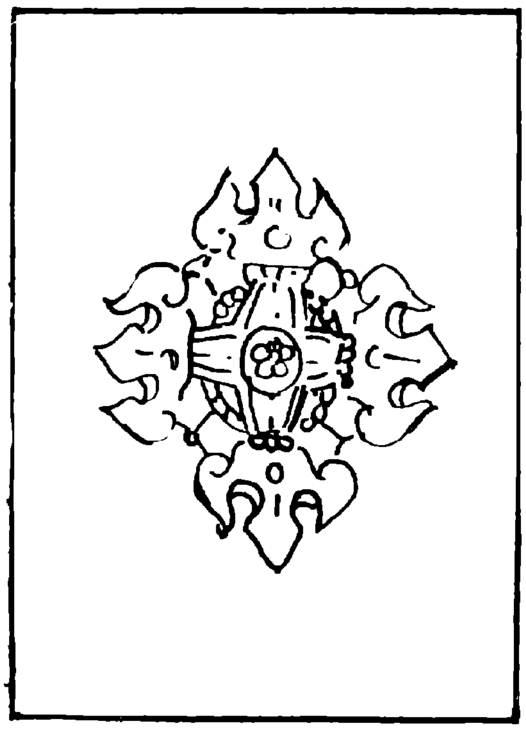
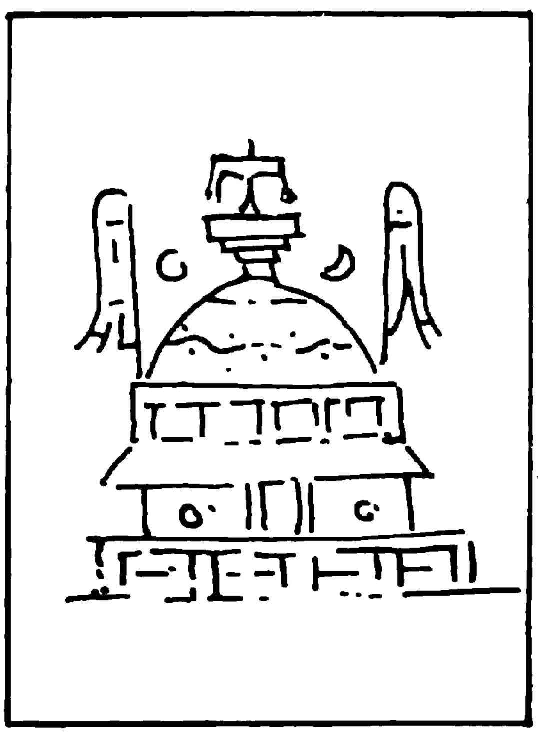
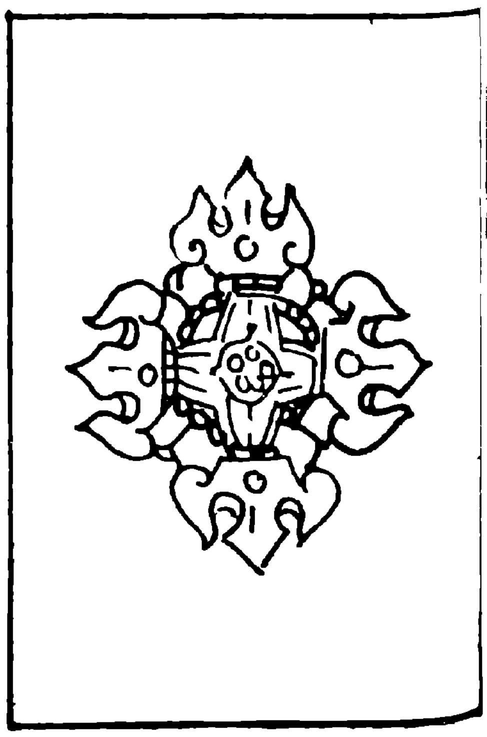
गौतम बुद्ध ने यह सुन लिया। उन्होंने आनंद से कहा कि भिक्षु को आने दो। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी गौतम बुद्ध किसी को निराश करना नहीं चाहते थे। भिक्षु ने गौतम बुद्ध की वाणी को सुनते ही बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। इस प्रकार गौतम बुद्ध के जीवन काल में संघ में शामिल होने वाले अंतिम सदस्य का गौरव सुबद्ध को प्राप्त हुआ।

गौतम बुद्ध की दशा बिगड़ने लगी। समाचार मिलते ही आस-पास के अनेक भिक्षु उनके पास पहुँचे। उन सभी को गौतम बुद्ध ने अंतिम उपदेश दिया, "मृत्यु अनिवार्य है, स्वाभाविक है। इसलिए यही चेष्टा करो कि जीवन सन्मार्ग पर चले।" इतना कहकर महाप्रभु ने सदा-सदा के लिए संसार त्याग दिया और वह महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

परंतु गौतम बुद्ध की शिक्षाएं उनके साथ नहीं मरीं। उनके जीवन काल में ही बौद्ध धर्म का भारत में व्यापक प्रभाव हो गया था। उनकी मृत्यु के पश्चात इस धर्म का प्रसार भारत के बाहर भी हुआ। इस प्रसार में प्रमुख योग सम्राट अशोक ने

दिया। यह पूर्व में बर्मा एवं इण्डोचीन तक; दक्षिण में श्रीलंका तक तथा उत्तर में तिब्बत, चीन और जापान तक फैला और शीघ्र ही दिग-दिगंत में गुँज उठा:

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

मुद्रक : डायमंड लिथो ग्राफरस प्रा० लिमिटेड नारायणा-II नई दिल्ली-110028

